होरी माधुरी

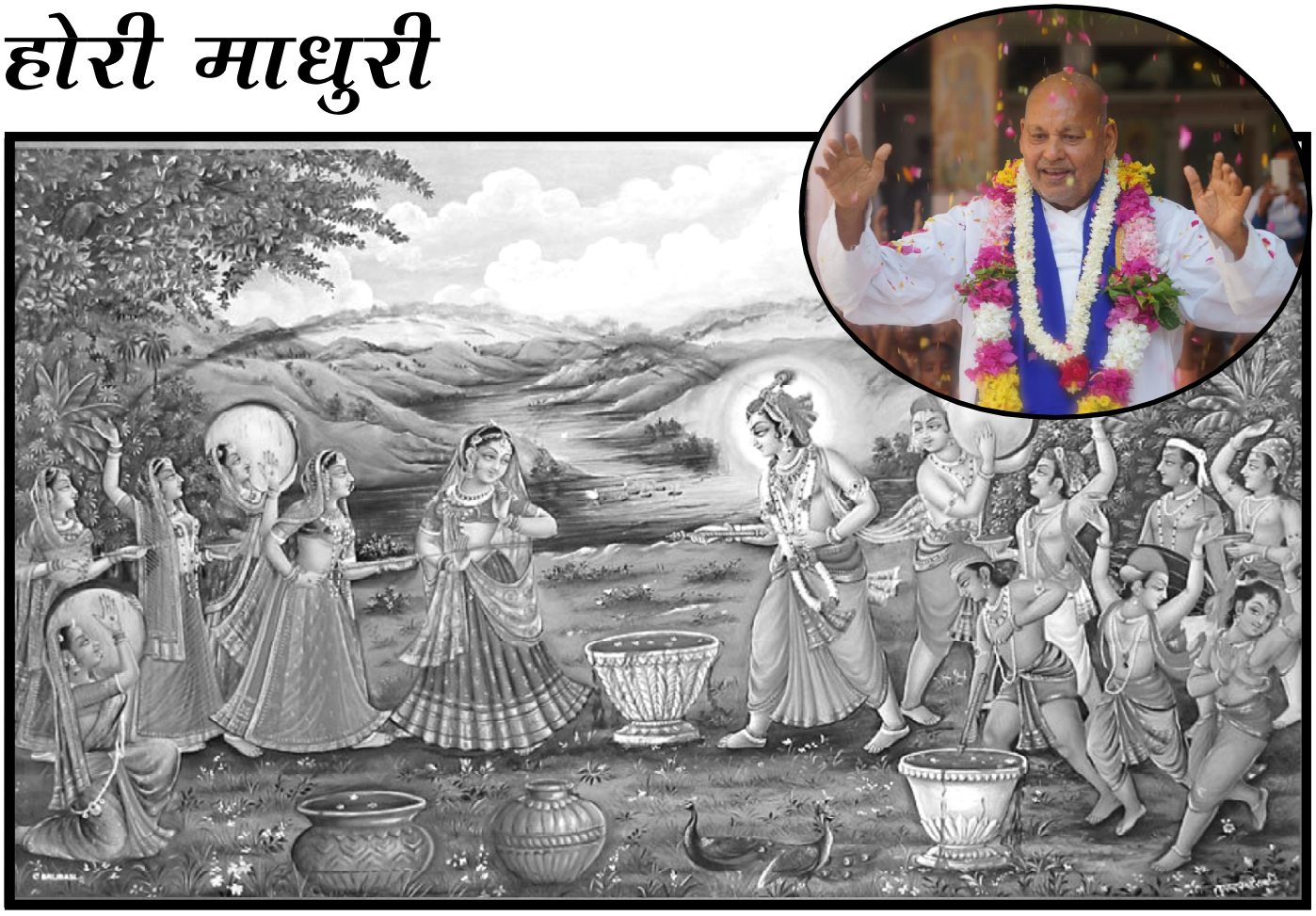

बरसाने चलो खेलैं होरी।

पर्वत पे वृषभानु महल है, जहाँ बसे राधा गोरी।
चोबा चन्दन अतर अरगजा, केशर गागर भर घोरी।।
उतते आये कुंवर कन्हैया, इत ते राधा गोरी।
सूरदास प्रभु तिहारे मिलन कूँ, चिरजीवो मंगल जोरी।।

अनुक्रमणिका

१.	विश्व प्रसिद्ध बरसाने की लट्ठमार होली	३
२.	मान मंदिर की गतिविधियाँ	६
३.	महत् कृपा का महत्व	८
४.	रसीली ब्रज यात्रा	९
५.	सच्चा समर्पण ही भक्ति है	१०
६.	कलियुग में श्रेष्ठ कौन	११
७.	गहवरवन के दिव्य सुमन पंडित हरिश्चन्द्रजी	१२
८.	गौ–सेवा से गोविन्द–प्राप्ति	१५
९.	भक्त परमेष्ठी दर्जी	१७
१०.	Essence of Spiritual Practices	२०
११.	प्रेमसिन्धु गोपी–विरह	२२
१२.	श्रीजी की वसनाञ्चल–लीला	२४
१३.	धामावतार से ही हुआ सर्वसमृद्धिमान् ब्रज	२७
१४.	भगवन्नाम ही पालक–रक्षक	२९
१५.	निर्गुणाभक्ति	३१

इस पत्रिका में लेख लिखने वाले कुछ संतों-भक्तों का नाम उनके अति दैन्याग्रह के कारण नहीं दिया गया है। जिनके नाम दिये गये हैं, ऐसा समाज-कल्याण के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये विशिष्ट योगदान के कारण किया गया है, वस्तुतः वे भी लेख के साथ अपना नाम दिये जाने के विरुद्ध हैं।

संरक्षक –

श्री राधा मान बिहारी लाल

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान अनेकानेक सत्कार्यों का संचालन प्रभु की प्रियता व लोक कल्याण की भावना से निःशुल्क कर रहा है, उसी तरह 'मान मंदिर' पत्रिका का भी कोई शुल्क नहीं रखा गया है।

श्रद्धानुसार भावार्पित तुलसीदल भी ग्राह्य है अर्थात् स्वेच्छानुदान स्वीकृत है।

प्रकाशक –

श्रीराधाकान्त शास्त्री

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ. प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558, 9927194000

विश्व प्रसिद्ध बरसाने की लट्ठमार होली

बरसाने चलो खेलें होरी

बरसाने में रंगीली होली ५००० वर्ष से भी अधिक पुरानी है। इसका प्रमाण गर्ग सहिंता में है। विवाह के बाद श्रीकृष्ण होरी खेलने बरसाने आते हैं। उसके बाद नन्द बाबा का स्वांग दल बरसाने आता है जिसमे ब्रह्मा, रूद्र, सनकादिक, शुकदेव, नारद आदि प्रभृति भाग लेते हैं। इसी रस वर्षा से लुब्ध देवगण यहाँ आते हैं तभी तो नाम बरसाना है। तो यह होरी लीला बरसाने में पाण्डेय लीला अष्टमी से प्रारंभ होती है। अष्टमी के दिन नंदगाव से पाण्डेय जी होरी का निमंत्रण लेकर आते हैं– ये होरी उत्सव परंपरा आज तक बरसाने में चलती आ रही है। आज भी नन्दगाँव के पाण्डेय ब्रज बरसाने में निमंत्रण देने आते हैं –

नन्दगाँव को पाण्डे ब्रज बरसाने आयो।
भरी होरी के बीच सजन समध्याने धायो।।
पाण्डे जी के पायनि कौ हसी शीश नवायो।
अति उदार वृषभानु राय सन्मान करायो।।
पाँव धुबाई हनवाई प्रथम भोजन करवायो।
भानु भवन भई भीर फाग कौ खेल मचायो।।

(श्रंगार रस सागर)

उस दिन बरसाने की गोपियों ने पाण्डेय जी को घेर लिया और न जाने कितने रंग के मटके उन पर डाले, पाण्डेय जी बेचारे चिल्लाने लगे और श्रीराधारानी की टेर लगायी – श्री राधे! श्री राधे! बचाओ इन बरसाने की गोपियों से। श्रीजी को बहुत करुणा आई और जाकर पाण्डेय जी को गोपियों से छुड़ाया और उनको अपने महल ले गयीं और बाबा का दगला (गर्म झंगा) पहनने को दिया। कीर्ति माता ने उनको गर्म दूध पिलाया और पाण्डेयजी राधारानी की जय–जयकार करते नन्दगाँव चले जाते हैं और अगले दिन नवमी को ठाकुर जी (नंदलाल) की होरी की बारात बरसाने आती है। स्वांग में सब देवता आये जब नंदनंदन नंदगाँव से अपने टोल के साथ ग्वालबालों के साथ होरी खेलने बरसाने आते हैं तो उनका पहला पड़ाव होता है पीरी पोखर। यही पाग (बाँध) कसकर ढाल लेकर चलते हैं (आज भी यह परंपरा ज्यो की त्यों चल रही है) जहाँ आगे उनका स्वागत होता है जिसे मुँहमिड़ी कहते हैं। यह प्रतिवर्ष होता है। स्याम सुंदर के होली खेलने की बात जब सखियों को पता लगी तो वो सब राधारानी के पास गईं। ब्रज में नौ उपनंद थे, जो सभी गुणों से युक्त व धनवान –शीलवान थे। इनके घर में देवों के वरदान से कन्यायें उत्पन्न हुईं। वे राधारानी की सखियाँ अनुचरी थीं। एक समय बसंत ऋतु आई, सभी ने होरी का उत्सव आरम्भ कैसे हो, श्रीजी तो मान लीला में हैं। सब सखियाँ श्रीजी के पास आती हैं और कहती हैं, "हे राधारानी ! हे चंद्रवंदने! हे मधुमान करने वाली मानिनी! हमारी बात सुनो, यह होरी का उत्सव है, इस उत्सव को मनाने के लिए ब्रज के भूषण नंदलाल आये हुए हैं। श्यामसुंदर की ऐसी शोभा है –

"श्री यौवनोन्मद विघूर्णित....स्वपदारुणेन"

(ग.सं.मा.खं.१२/८)

हे राधे! यौवन की शोभा से ब्रजराज के नेत्र मद में झूम रहे हैं घुँघराली काली–काली लटूरियों व केशों की जो छटा है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। पीला जामा बड़ा घेरेदार है और पाँव में नुपुर छम–छम बज रहे हैं। बरसाना की ओर चले आ रहे हैं। यशोदा के द्वारा धारण कराया गया मुकुट सूर्य की तरह चमक रहा है। कुंडल चमक रहे हैं, गले में बनमाला ऐसी लगती है जैसे बादल बिजली के साथ आ गए हैं। उनका सारा शरीर लाल रंग से रंगा हुआ है और उनके हाथ में पिचकारी है। हे राधे! वो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस होरी को नन्ददास जी ने इस तरह से गाया है– राधारानी से सखियाँ कहती हैं कि हे राधे ! आज के दिन आप मान क्यों करती हैं? मान छोड़कर चलिये होरी के मैदान में –

"अरी चल नवल किशोरी गोरी भोरी होरी खेलन जांहि"

(श्रृं.र.सा)

कैसी सुन्दर चाँदनी रात है ! ऐसे में आपको कैसे घर में बैठना अच्छा लगता है? हे राधे ! वहाँ हर गाँव के गोपी–ग्वालों के टोल जुड़ रहे हैं।

उधर श्यामसुन्दर आये और उन्होंने देखा कि कोटि–कोटि गोपियाँ हैं किन्तु उनकी आँखें जिसे ढूँढ़ रही थीं, वो राधारानी वहाँ नहीं हैं। श्यामसुन्दर ने चारों ओर देखा पर श्रीजी नहीं थीं, नेत्र नीचे करके उदास हो गये। करोड़ों गोपियाँ हैं पर राधारानी नहीं हैं।

श्यामसुन्दर ने विशाखाजी को आँखों से पूछा कि 'श्रीजी' कहाँ हैं?

विशाखा ने कहा – "श्रीजी नहीं आईं", संकेत कर दिया कि अभी जाओ, तो विशाखा जी जाकर श्रीजी से बोलीं..."अब आप देर मत करो। बरसाने में श्याम सुन्दर बन–ठन के आये हैं, अब तुम चलो।" श्रीजी मुस्करा गयीं तो विशाखा जी समझ गयीं कि लाड़ली जी मान गयी हैं। विशाखा जी ने बाँह पकड़ कर उठा लिया कि

अब चलो और श्रीजी का श्रृंगार किया। श्रीजी जब चलीं तो ऐसे चल रही हैं कि कमर में लचक आ रही है।

उनका रूप ऐसे लगता है जैसे कि चमकती हुई ज्योति ! जैसे हवा में दीपक की ज्योति छनछनाती है ! चलते समय एक लट श्रीजी के गालों पे लटक आयी है और वो लट लटक कर गालों में जो नासिका का मोती है, उस मोती में उलझ गयी।

नन्ददास जी कहते हैं कि जैसे कोई मछली फाँसने वाला पानी में काँटा डालता है तो काँटे के नीचे आटे की गोली लगा देता है और मछली उसमें फँस जाती है। वैसे ही श्रीजी की एक घुँघराली लट जो लटकी, वह तो काँटा थी, लट मोती में उलझ गयी तो मोती आटे का चारा थी और मछली फँस गयी मछली क्या था? श्याम सुन्दर का मन!

चारों ओर सखियाँ और बीच में श्रीजी जा रही हैं तो ऐसा लगता है कि चारों ओर कुमुदनियाँ खिल रहीं हैं, एक चाँद जा रहा है, ये गौर चाँद राधा रानी हैं। ये चाँद आज पैदल जा रहा है। वहाँ पर अब खेल शुरू हुआ, पहले तो गुलाल से खेल हुआ। गुलाल के खेल के बीच में से श्याम सुन्दर ने श्रीजी को धोखे से पिचकारी मार दी तो श्रीजी ने मान कर लिया कि गुलाल से खेल हो रहा था, तुम जब हारने लगे तो बेइमानी क्यों की ? हुआ ये कि श्रीजी ने मान कर लिया और खेल रुक गया। यह तो बड़ा गड़बड़ हो गया, सारा रस ही चला गया। ललिता जी के पास मुकद्दमा गया कि इसका फैसला क्या होगा? तो ललिता जी ने कहा कि आप जो चाहो वह दण्ड इनको दे दो। इन्होंने बेइमानी तो की ही है। बोलीं कि क्या दण्ड दिया जाये? अब क्या दण्ड हुआ ये भी सुनिए।

गुलाल का खेल तो बहुत हुआ। गुलाल के खेल में जब श्यामसुन्दर हारने लग गये तो उन्होंने सबकी दृष्टि बचाकर बेइमानी की और श्रीजी को पिचकारी मार दी। श्रीजी बहुत चतुर हैं, वे जानती हैं कि अगर ये हारेंगे तो कोई न कोई बेइमानी जरुर करेंगे तो जैसे ही उन्होंने पिचकारी मारी, श्रीजी ने बड़ी चतुरता से मुड़कर उस धार को बाँये हाथ से रोक दिया। मारी तो थी श्यामसुन्दर ने कि सारा ऊपर से नीचे तक तर–बतर कर देंगे पर श्रीजी भी बड़ी खिलाड़ हैं। सारी धारा को अपने हाथ से रोक दिया पर फिर भी कुछ छींटे उनके गौर कपोलों पर आकर लग गये तो वह इतना अच्छा लग रहा था कि आप लोगों को हम क्या उपमा दें? जैसे अमरूद पर लाल–लाल छीटें जब पड़ जाते हैं तो बहुत अच्छे लगते हैं। वह इतनी अच्छी लगीं कि श्यामसुन्दर का होरी का खेल रुक गया और श्रीजी के पास आकर वो उन छींटों को देखने लग गये।

ऐसी शोभा हुई उनकी कि खेल ही रुक गया। श्याम सुन्दर समझ गये कि श्रीजी जरूर मान में हैं। बोले कि चलो फिर से खेलें। जब श्यामसुन्दर विनती करते हैं तो श्रीजी बोलीं कि – जाओ, तुम बेइमान हो। सब सखियाँ इकट्ठी हो गयीं और मुकद्दमा पुनः ललिताजी के पास गया। ललिताजी ने कहा कि – इन्हें हम यह दण्ड देती हैं कि इनकी आँखों में काजल लगा दिया जाय। होरी में यह बहुत बड़ा दण्ड है। होरी का काजल ऐसे नहीं होता। होरी का काजल गाढ़ा पोता जाता है। बोलीं – "मंजूर है दोनों को?" यह बदला रस भरा है।

श्रीजी ने दोनों हाथों की उंगलियों में काजल लिया। एक उंगली से नहीं, दोनों उंगली से काजल लिया। एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया कि कोई गड़बड़ न करें और दूसरे हाथ से काजल ले, उनके नेत्रों को देख रही हैं। वो भी देख रहे हैं कि जल्दी से काजल लगाएँ। जैसे ही वह काजल का हाथ लेकर जाती हैं तो वह गाल हटा देते हैं। झगड़ा बढ़ा, खींचातानी में श्रीजी ने अपनी बाँयी भुजा से उनको ऐसे कस लिया कि उनकी गर्दन हिल नहीं पायी और काजल लगा दिया।

यह लीला उसी दिन बरसाने में हुई। उसी के अंत में लिखते हैं कि श्रीकृष्ण को श्रीराधारानी के हाथों से जब काजल लग गया तो अपना पटका राधारानी को भेंट करके अपने घर चले गये। जो हार जाता है, वह पटका भेंट करता है। यह 'गर्ग संहिता' की होरी की लीला सुनायी।

जब बरसाने वाली नन्दगाँव में जाती हैं होरी खेलने तब गोपियाँ कहती हैं –

दरसन दै मोर मुकट वारे दरसन दै।
चंदा–सूरज तेरो ध्यान धरत हैं, ध्यान धरे नौ लख तारे।
गल बैजन्ती माला सोहै, कानन में कुंडल वारे।

रंगीली होरी के बारे में लिखा है कि जब श्रीकृष्ण बरसाने में होरी खेलने आते हैं, वह पूरे मद में होते हैं। क्या यह यौवन का मद है?

बोले – "नहीं–नहीं, अपनी जवानी का मद नहीं है, कुछ और बात है।" यौवन है श्रीराधा रानी पर और गर्व हो रहा है श्रीकृष्ण को ?

"लाड़लो गोरी के गुण गरबीलो"

यह विचित्र रस है ! श्रीकृष्ण अपने मद भरे नेत्र घुमा रहे हैं। उनके गालों पर लटूरियाँ छा रही हैं। उनकी ऐसी शोभा है, जैसे कोई नयी चूनरी लेकर फरफराती चली आ रही है। ये अदा है ! इस अदा से वो अपने जामा को हिलाते हुए चले आ रहे हैं। चरणों से नूपुरों की छम–छम आवाज आ रही है। इस तरह से श्रीकृष्ण मुकुट पहने, बरसाने में होरी खेलने आये हैं

कान्हा धरे रे मुकुट खेलैं होरी।
उतते आये कुंवर कन्हैया इतते राधा गोरी।।

फेंट गुलाल हाथ पिचकारी, मारत भर–भर झोरी।
रसिक गोविन्द अभिराम श्यामघन जुग जीवौ यह जोरी।।

लठ्ठमार होरी में लट्ठ या बांस की परंपरा क्यों रखी गई ? इसके कई कारण हैं जैसे – नायक की अधिक चंचलता को रोकने के लिए लकुट ही काम आती है और गोपीजन के लठ्ठप्रहार ग्वाल ढालों के द्वारा बचाते हैं। श्री विट्ठल दास जी का प्रसिद्ध पद है –

ब्रज में होरी रंग बढ्यौ हो।
तब नन्दनन्दन फगुआ देन मिस प्यारी सन्मुख आय।।
मृगमद केसर और अरगजा भीजे उर लपटाय।
तब सकुची गोपी सब कनक लकुट लै हाथ।।
पकरन धाईं छबीले लाल को खसत झीने पटभात।
भागे सकल सखा संग के तब मोहन लीने घेर।।
अछन उठा गयी ले पिय को फिर चितवत मुख फेर।

ये पाँच हजार पुरानी परम्पराएँ आज भी ज्यों की त्यों चली आ रही है। आज भी नन्दगाव से अष्टमी के दिन ग्वालबाल टोल बनाकर आते हैं और फिर शुरू होती है बरसाने की रंगीली गली में विश्व प्रसिद्ध बरसाने की लट्ठमार होली "जिसमें ग्वालबाल नंदगाव के होते हैं और गोपियाँ बरसाने की, ग्वालों के पास ढाल होता है, गोपियों के पास लकुट (लठ्ठ)। गोपियाँ ग्वालों पर होरी में लठ्ठ से प्रहार करती हैं और ग्वाल ढालों से स्वयं की रक्षा करते हैं। भगवल्लीला से जुड़ी होरी की ये परम्परा गोस्वामी समाज द्वारा आज भी बड़े भाव से पूर्ण ढंग से निभाई जा रही है। यही होरी दशमी के दिन नन्दगाँव में भी होती है।

हर वर्ष मान–मंदिर नाट्य अकादमी द्वारा रंगीली होरी व राधाष्टमी के पर्व पर उत्सव के एक दिन पहले नाटिका का आयोजन (भक्तचरित्र) होता है जो सन २०११ से निरंतर चल रहा है।

दाऊ जी का होरंगा

बरसाने की रंगीली होरी – दाऊ जी के हुरंगा का इतिहास, राम–श्याम के विवाहोत्सव के रूप में राधारमण, रेवतीरमण राम–श्याम का विवाहोत्सव ही बरसाने में होरी व दाऊजी में हुरंगा के रूप में मनाया जाता है।

पल्ले पर गई रंग में रंग दई होरी खेलत रसिया।
लंहगा सबरो रंग में कर दियो रंग दइ अंगिया।
रंग बिरंगी कर के छोड़ी रंग दइ फरिया।।
डफ लै होरी गावन लाग्यो दै दै हंसिया।
हांसी सुन रिस लागै बदलो लूँगी मन बसिया।।
रसिया की धोती पकड़ी मैंने मूठन के कसिया।
धोती फाड़ बनयो कोड़ा पीटयो मन भरिया।।
पिट–पिट के हू फाग सुनावै दाऊ को भैया।
ऐसो भयो होरंगो ब्रज में गावै दुनिया।।

होरी विवाहोत्सव

बरसाने की होरी श्रीकृष्ण के विवाहोत्सव के रूप में –

नन्दगाँव कौ पाँड़े ब्रज बरसाने आयौ।
भरि होरी के बीच सजन समध्याने धायौ .....

दाऊ जी का हुरंगा दाऊ जी के विवाहोत्सव के रूप में –

खेलौ बलदाऊ जी सों होरी।
वै तो कहिये ब्रज के राजा फगुवा लैन चलो री
फागुन में हिय उमगि मरयो है मन भावै सोई करौ री
लाज सब दूर धरो री।।.....

अथवा

ब्रज जुवतिन के बस परे सुनियत श्री बलराम।
केसरि मुख मंडन कियौ गंडन बिन्दु लगाय।।

(बलदेव विलास)

जब तक विवाहोत्सव होरी लीला के रूप में नहीं माना जायेगा श्रृंगार रस सिद्ध नहीं होगा।

बठैन का होरंगा

ब्रज की प्राचीन होलियों में बठैन का होरंगा प्रसिद्ध है, जो जाव और बठैन के गोप–गोपियों में परस्पर खेला जाता है। दाऊ जी मंदिर में समाज करके ढोल, ढप, नगाड़ों की गड़गड़ाहट के मध्य एक अलौकिक ही दृश्य होता है। होली के पश्चात् तृतीया के दिन जाव के हुरियारे बठैन में जाते हैं और बठैन की गोपियाँ लाठियों से उन्हें मारती हैं। वे बबूल के झामे से (काँटों के डंडों से) अपना बचाव करते हैं। हुरंगा की जय–पराजय का केन्द्र एक ध्वजा होती है, जहाँ तक पहुँचने के लिए बठैन की गोपियाँ लाठी–डंडो से प्रहार करती हैं ताकि काँटों की बनाई दीवार तोड़कर लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

फालेन की होली (प्रह्लाद लीला)

फालेन ग्राम में ठाकुर जी ने ब्रजवासियों को प्रह्लाद लीला दिखाई। जिसकी अनुकरण लीला आज तक चल रही है। यहाँ आज भी प्रह्लाद मन्दिर का पुजारी (पंडा) एक महीने तक प्रह्लाद–मन्त्र का जाप व उपवास करता है और मासान्त पर पूर्णिमा की रात्रि को मन्दिर से निकल कर प्रह्लाद कुण्ड में स्नान कर, शीतला लग्न में लगभग चार बजे जहाँ १० फुट ऊँची होलिका बनाई जाती है और अग्नि प्रज्वलित की जाती है और सबके देखते ही देखते पंडा धधकती हुई आग से निकल कर पुनः प्रह्लाद मन्दिर में चला जाता है। प्रह्लाद मन्त्र के प्रभाव से आग उसे जला नहीं पाती। इस लीला को देखने के लिए देश–विदेश से हजारों लोग आते हैं। ❍

मान मंदिर की गतिविधियाँ

ब्रज–रक्षा में सतत् सलंग्न मान मंदिर सेवा संस्थान ने लम्बे संघर्ष के पश्चात् भरतपुर जिले की कामा एवं डीग तहसील के सभी पर्वतों को धार्मिक और पर्यावरणीय रक्षा के आधार पर २००६ में आरक्षित वन घोषित कर दिया। जिसमें ब्रजभूमि का पवित्रतम तीर्थ डीग तहसील का आदिबद्री सुरक्षित हो गया परन्तु नगर तहसील में भी यही दिव्य पर्वत कुछ अंश में फैला हुआ है, जिस पर खनन पट्टा देकर सरकार ने बफर जोन की अनदेखी कर आरक्षित क्षेत्र में भी अवैध खनन को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। किसी एक व्यक्ति का यदि एक अंग काट दिया जाए तो वह अपंग कहलायेगा। करोड़ों श्रृद्धालुओं की आस्था का केंद्र यह क्षेत्र अध्यात्म जगत का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थल है। सारा क्षेत्र इसे बचाने के लिए आन्दोलन रत है। इसकी अनदेखी से सामाजिक वैमनस्यता किसी भी अनहोनी को आमंत्रित कर सकती है।

अतः इस क्षेत्र को भी वन विभाग को स्थानांतरित कर सुरक्षित करने की अपेक्षा से पतित पावनी ब्रज अवनी के नगर क्षेत्र में ग्राम कोडली व नागल में हजारों ब्रजवासियों के साथ जनसभा कर राजस्थान सरकार को हमारी संस्कृति के साथ खिलवाड़ न करने का सन्देश विरोध प्रदर्शन के द्वारा दिनांक ०५/०२/२०१७ को दिया। हिन्दुओं की आस्था तो स्वाभाविक है कि वह श्रीकृष्ण लीला–स्थलियों के संरक्षण की ओर प्रयत्नशील रहे, परन्तु यहाँ के मुस्लिम ब्रजवासियों का आशातीत सहयोग दिखाई दिया। सभी ने संकल्प लिया कि हम ब्रजवासी हैं और ब्रज–रक्षा हमारा अधिकार है, कर्तव्य है तथा अंतिम श्वाँस तक आदिबद्री पर्वत को बचाने के लिए संघर्ष करेंगे। इसी सन्दर्भ में दिनांक २०.०२.२०१७ से अनिश्चितकालीन धरना आदिबद्री के पश्चिम क्षेत्र में ग्राम नागल में करने का सुनिश्चित किया। इसके समस्त प्रबंधन की जिम्मेदारी भी उन्हीं लोगों ने ली। मान मंदिर सेवा संस्थान ने न केवल किसी संप्रदाय विशेष की बातें की हैं, अपितु इस संकीर्णता से ऊपर उठकर सर्वसमाज में प्रेम सौहार्द्य का सन्देश दिया है, जिसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। हिन्दू–मुस्लिम एकता का यह अद्भुत संगम वैमनस्यता को मिटाने में द्रष्टव्य है।

राधारानी गौशाला की स्थापना म० प्र० के बीना में –

अंतर्राष्ट्रीय भागवत वक्ता ब्रजबालिका साध्वी मुरलिकाजी श्रीमान मंदिर सेवा संस्थान के विरक्त संत ब्रज विभूति श्रद्धेय श्री रमेश बाबा के विविध संकल्पों को पूरा करने के लिए निरंतर सेवारत हैं। ब्रजरज रस माहात्म्य रचित साहित्य के साथ–साथ भगवान् श्रीकृष्ण की प्यारी गौमाता के संरक्षण–संवर्द्धन में भी महती भूमिका का निर्वहन कर रही हैं। अपनी मधुर वाणी के द्वारा श्रीमद्भागवत कथामृत का पान कराते हुए, समस्त राष्ट्र में गौ–प्रेम का सन्देश दे रही हैं। वात्सल्य की अद्वितीय प्रतिमा गौमाता जो स्वजिह्वा से चाट –चाट कर अपने वत्स को निर्मल बानाती है। ऐसा विलक्षण प्रेम संसार के किसी जीव में द्रष्टिगोचर नहीं होता। प्रेम सन्देश वाहनी एवं भगवान की प्रिय गाय की उपेक्षा ने कलि के प्रारंभकाल में ही उस कलि में मानो यौवन ही ला दिया है। जीवनदायिनी व सदा परोपकारिणी गाय को आज का स्वार्थी मानव घर से बाहर निकाल कर उस पर होने वाली क्रूर यातनाओं के पाप का भार मोल ले रहा है। जबकि गाय कभी किसी पर भार नहीं है। उसका प्रत्येक उत्पाद मानव जाति के लिए अमृत तुल्य है। वैसे भी समस्त देवी–देवताओं का वास उसके अंग में होने से हम सब की वह आराध्या ही है। घर–घर गौ–पालन का सन्देश साध्वी मुरलिकाजी देती हैं। वे कहती हैं कि जिस राष्ट्र में गाय निर्भय श्वास लेती है, वह राष्ट्र सदा प्रगतिशील व सुखी रहता है। यही कारण है – उनका प्रयत्न है कि भारतवर्ष जो किसी समय

अतिसमृद्ध और सोने की चिड़िया कहा जाता रहा है, वह फिर से अपनी खोई हुई गरिमा को गौ सेवा से पुनः प्राप्त करे।

फरवरी मास में दिनांक ०२.०२.२०१७ से ०८.०२.२०१७ के मध्य आयोजित श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञान यज्ञोपरांत देवी मुरलिका ने बीना (म०प्र०) के नृसिंह मंदिर में एक गौ–सेवा समिति का गठन कर एक नवीन गौशाला जिसका नाम राधारानी गौधाम की स्थापना ग्राम बमोरीकला में किया। जैसे ब्रज में घूमती हुई गायों का आश्रय स्थल बरसाने की 'माताजी गौशाला' बनी हुई है, वैसे ही बीना की 'राधारानी गौशाला' अपने आसपास के क्षेत्र की गौमाता का आश्रय स्थल बन जायेगी। इस तरह उनका गौ–प्रेम गौरक्षा में जगह–जगह सहयोगी सिद्ध होगा।

प्रभातफेरी से संस्कारित जनजीवन –

श्रीराधाकान्तजी शास्त्री (व्यवस्थापक, मानमंदिर)

संस्कारहीन समाज पशुवत् होता चला जा रहा है। जीवन का उद्देश्य क्या है ? इसका ज्ञान ही जिन्हें नहीं है, वे मनुष्य अवश्य हैं परन्तु उनमें और पशुओं में कोई अंतर नहीं है। 'खाना–पीना, सोना, बच्चे पैदा कर लेना या उन्हें भी खाने–पीने का अभ्यास करा देना' ये सभी क्रियाएँ समान रूप से हममें और पशुओं में देखी जाती हैं। बिल्ली भी अपने बच्चों को चूहे का शिकार करना सिखा देती है। भगवान् जो करुणासागर हैं, कृपा करके अनंतकाल से नारकीय यातनाओं को भोग रहे जीवों को 'मनुष्य–देह' जो देव–दुर्लभ है, प्रदान करते हैं। यही नहीं वे उनके कल्याण हेतु अवतार ग्रहण कर ऐसी मानवोचित लीलाएँ करते हैं ताकि सहज में ही उनमें अभिमति हो जाए और प्रभु–प्रेम का उदय उन्हें नारकीय–यातनाओं से त्राण दिला सके। संत–हृदय नवनीतवत् सतत् द्रवित होता है, तभी तो वे प्राणीमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया करते हैं। ब्रजभूमि ही क्या सर्वत्र भगवन्नाम प्रभातफेरी के उद्घोष के द्वारा ब्रजनिष्ठ विरक्त संत श्रद्धेय श्रीरमेश बाबा के द्वारा नित्य निरंतर गाँव–गाँव में जीवों को संस्कारित किया जा रहा है। मान मंदिर के बालक–बालिकाएँ जिन्होंने 'निष्काम सेवा' को ही अपने जीवन का सर्वोच्च लाभ मान रखा है क्योंकि कहा भी है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि।।

(भागवत ३.७.४१)

गतमास में राजस्थान के जिला भरतपुर एवं अलवर के विभिन्न ग्रामों में 'भगवन्नाम प्रभात फेरी सम्मलेन' आयोजित कर वहाँ के जनजीवन को परिवर्तित किया है। फलतः प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में गाँव में भगवन्नाम के साथ परिक्रमा हो रही है जिससे पारस्परिक प्रेम सौहार्द्य तो बढ़ ही रहा है, भगवन्नाम सारी सृष्टि को निष्पाप बना रहा है। बच्चों में सत्संस्कार जागृत हो रहे हैं। बालक ध्रुव, प्रह्लाद के चरित्र उन्हें प्रभावित कर रहे हैं। संस्कारित बालक न केवल अपना जीवन सफल बना रहे हैं अपितु माता–पिता, परिजनों की सेवा–शुश्रुषा से पुरातन संस्कृति का पुनः अनुपालन करना सीख रहे हैं।

○

महत् कृपा का महत्व

(व्याख्याचार्या मान मन्दिर वासिनी बालसाध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा)

"कृष्णभक्ति–जन्म मूल हय साधु–संग"

कृष्णभक्ति के जन्म का मूल साधु–संग है। श्रीनारदजी की कृपा के बिना क्या गर्भ जैसे अत्यन्त घृणित, निन्दित, अज्ञानान्ध स्थान में पल रहे शिशु को भक्ति तत्व का दिव्य ज्ञान सम्भव था अथवा पाँच वर्षीय बालक ध्रुव क्या सर्वदर्शनीय भगवान् का भी दर्शनीय बन सकता था ? तभी तो भगवद्दर्शन के बाद भी ध्रुव ने याचना की –

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो,
भूयादनन्त महतामलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं,
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः।।

(भागवत ४.६.११)

हे अनन्त भगवन् ! मुझे तो उन अमलाशय महात्माओं का संग दे दें, जिनका चित्त तैलधारावत् अविछिन्न रूप से एक रस आपके प्रति लगा हुआ है, उनका संग प्राप्त करके आपके लीला, गुण, कथासुधा को पीकर मैं उन्मत्त हो जाऊँगा एवं बिना प्रयास के सहज ही इस भयंकर भवसागर से पार हो जाऊँगा। श्रीप्रह्लादजी भी कह रहे हैं –

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे,
कामाभिकाममनु यः प्रपतन् प्रसङ्गात्।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः,
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम्।।

(भा. ७.६.२८)

हे प्रभु ! यह संसार विषैले सर्पों का अंधकूप है जिसमें अनेक विषधर सर्प सदा दंशन के लिए तैयार हैं। विषयकामी पुरुष इस कूप में गिरे हुए हैं, मैं भी संग वशात उनके पीछे–पीछे कूप में गिरने वाला था कि श्रीदेवर्षि नारदजी ने मुझे अपना लिया, हाथ पकड़ कर गिरते हुए को बचा लिया। भला मैं उनको अथवा उनकी सेवा को छोड़ ही कैसे सकता हूँ ? आपको छोड़ा जा सकता है किन्तु उन्हें नहीं। क्या नारदजी की कृपा के बिना दक्ष के ग्यारह हजार पुत्र परमार्थ–पथ के पथिक बन सकते थे ? अथवा क्या नारदजी की कृपा के बिना श्रीजानकीजी के वक्ष पर चंचु प्रहार करके भागने वाला विकल जयन्त अपने प्राणों का परित्राण भी कर सकता था?

इससे स्पष्ट होता है कि साधक चाहे कितना ही साधनांग अनुष्ठान करता रहे, महत–कृपा के बिना सिद्धि सम्भव नहीं है और साधन शून्यता में भी महत–कृपा से बड़ी–बड़ी सिद्धि देखी गई हैं। भगवान् स्वयं सदा भक्तों के वशीभूत हैं अतः भगवत्कृपा भी भक्त–कृपा सापेक्ष है। अतएव कृष्ण–कृपा–प्राप्ति अथवा कृष्ण–प्राप्ति के लिए भक्त–कृपा की अपरिहार्यता है। महत् पुरुष कौन ?

श्री ऋषभ देव जी के मतानुसार –

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते–
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये।।
ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था
जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु
न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके।।

(भा. ५.५.२,३)

महापुरुष वे ही हैं जो सर्वत्र समदर्शी, सरल चित्त, प्रशांत, भगवन्निष्ठा युक्त बुद्धि वाले, क्रोध विहीन, सबके सुहृद व अदोषदर्शी होते हैं। भगवत–प्रीति ही जिनका परम पुरुषार्थ है। स्त्री–पुत्र, धन, गृहादि के प्रति आसक्ति तो दूर जो लोग भोजन, स्त्री, पुत्र, धनादि से प्रीति करते हैं उनमें भी वे प्रीति नहीं करते हैं। जितने धन से उनकी भक्ति के अनुष्ठान का निर्वाह हो सके, उससे अधिक धनादि वे कभी ग्रहण नहीं करते हैं। देह, गेह व इनके अनुबन्धों में भी उनकी लेश मात्र भी आसक्ति नहीं होती है। ध्रुव, प्रह्लाद ही नहीं स्वयं भगवान् भी ऐसे उन निष्किंचन भक्तों को नहीं छोड़ सकते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं –

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा।।
ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे।।
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

(भा. ९.४.६४,६५,६८)

जिन्होंने मेरे लिए स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण, धन, लोक, परलोक सब कुछ छोड़ दिया है उन अपने शरणागत भक्तों को छोड़ना तो दूर, उन्हें छोड़ने का संकल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ ? यहाँ तक कि उनके बिना मैं न स्वयं को चाहता हूँ, न अपनी अर्धांगिनी लक्ष्मी को ही। कहाँ तक कहूँ, वे मेरा हृदय हैं और उनका हृदय मैं स्वयं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते हैं तथा मैं उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता हूँ। ❍

रसीली ब्रज यात्रा

(शास्त्रों में ब्रजपरिक्रमा का अत्यधिक महत्त्व है। स्वयं नंदनंदन ने ब्रह्मा जी से कहा– ''ब्रज परिकम्मा करहु देह को पाप नसावहु'' (सूरसागर) (भा. १०/१४/४१ त्रिः परिक्रम्य) मान मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ ''रसीली ब्रज यात्रा'' भाग–१ के माध्यम से आइये हम लोग ब्रज यात्रा करते हैं। इस क्रम में पहला पड़ाव है–

बरसाना

सोई तौ बचन मोसौं मानि तैं मेरौ लाल मोह्यौ री साँवरौ।
नव निकुंज सुख पुंज महल में सुबस बसौ यह गाँवरौ।।
नव–नव लाड़ लड़ाइ लाड़िली नहिं नहिं इह ब्रज जाँवरौ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी पै वारौंगी मालती भाँवरौ।।

(केलिमाल–४४)

बरसाना गाँव ब्रह्माचल पर्वत के नीचे है। ब्रह्माचल पर्वत जो ब्रह्माजी का अंग ही है। उनके मुख रुप चार शिखरों पर चार गढ़ हैं (१) मानगढ़ (२) दानगढ़ (३) विलासगढ़ (४) भानुगढ़। जिन पर क्रमशरू वृषभानु भवन (भानुगढ़), दानलीला (दानगढ़), झूलन लीला व विलास लीला (विलासगढ़) एवं मान लीला (मानगढ़) हुई है। सिंहपौर पर ब्रह्मा जी का विग्रह भी है जिसे भक्तगण प्रणाम कर पर्वत पर चारों गढ़ों के दर्शन करते हैं।

ततो राधा कृष्ण दर्शन प्रार्थना मन्त्र –

नमः प्रियायै राधायै ब्रह्मणो वरदायिने।
सर्वेष्टफलरम्याय राधाकृष्णायमूर्तये।।

(ब.भ.वि)

अर्थात्– राधा रानी प्रिया जी को नमस्कार है और ब्रह्मा को वर देने वाले श्रीकृष्ण को नमस्कार है। यहाँ पर श्रीराधा कृष्ण के दर्शन से सब इष्ट फल प्राप्त हो जाते हैं।

ब्रह्मा जी, श्रीजी के चरणों की रज पाने के लिए यहाँ पर्वत बने। भागवत में आता है –

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द–
स्त्वापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव

(भा.१०.१४.३४)

ब्रह्मा जी चाहते थे कि ब्रज के किसी भी निवासी की चरण रज मिल जाए। उसकी रज, जिसका जीवन ही भगवान् हैं। श्रुतियाँ आज तक जिन चरणों की रज को ढूँढ़ रहीं हैं, वही रज ब्रह्मा जी को श्रीकृष्ण की कृपा से मिली।

ततो वृषभानुपुर दर्शन प्रार्थना मन्त्र –

महीभानुसुतायैव कीर्तिदायै नमो नमः।
सर्वदा गोकुले वृद्धिं प्रयच्छ मम कांक्षितां ।।

(ब.भ.वि)

अर्थात्– वृषभानु व कीर्ति जी को नमस्कार है। सदा गोकुल (ब्रज) में मेरी आकांक्षा पूर्ण करें। यह गाँव चारों ओर वन कुंजों से घिरा है। प्रेमवन, मानेंगितवन, मयूरवन, गहवरवन, आदि। इसीलिये श्रीलाड़ली जी से सखियाँ प्रार्थना करती हैं कि नन्दलाल ब्रज में बरसाना छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं। आप इन पर प्रेम वर्षा करें।

भानुगढ़

भानुगढ़ पर महाराज वृषभानु जी का महल बना, जहाँ श्रीराधा का प्राकट्य, बाल, पौगण्ड एवं कैशोर आदि लीलाएँ होती हैं।

यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानुगेहे।
स्यात्किंकरी भवितुमेव ममाभिलाषः।।

(रा.सु.नि.४०)

तथा तत्रैव

सा काचिद् वृषभानुवेश्मनि सखीमालासु बालावली।
मौलिः खेलति विश्वमोहनमहासारूप्यमाचिन्वती।।

(रा.सु.नि.२२५)

तथा

नन्दिग्रामे वृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ।।

(भा.मा. स्क.पु.१/३८)

वृषभानुपुरशतक से

जयत्यशेषाद्भुतमाधुरी सा, पुरी वृषाट्टस्कर्रराजकस्य।
यन्नाम श्रृण्वन्ननुनंदसूनु वृंजत्यवस्थां जड़िमाभिधानाम्।।

(वृ.पु.श)

अर्थात् – सम्पूर्ण माधुरी वाली, वृषभानु पुरी विजय को प्राप्त हो रही है, जिसके नाम को सुनकर ही 'श्रीकृष्ण' प्रेम मूर्च्छा को प्राप्त हो जाते हैं।

क्रमशः.....

सच्चा समर्पण ही भक्ति है

अन्तर्राष्ट्रीय कथा व्यास डॉ. श्री रामजीलाल शर्मा
(मान मन्दिर, बरसाना)

किसी क्रिया विशेष का नाम भक्ति नहीं है, समर्पित भाव से जो भी कर्म किये जाते हैं, सब भक्ति की ही श्रृंखला में आते हैं। हम लोग जो कुछ भी कर्म करते हैं अच्छा या बुरा, उसका फल हमें जरूर भोगना पड़ता है। कर्मों का फल जो हम लोग भोगते हैं, उसे कर्मबंधन कहा जाता है। कर्म करने से कभी भी कर्म बंधन नष्ट नहीं होता है। परन्तु भागवत में व गीता में कर्म करने की एक तकनीक (technique) बताई गई है जिसके अनुसार यदि कर्म किया जाये तो उससे कर्म बंधन नष्ट हो जाता है। जैसे किसी औषधि लेने की सेवन–विधि बदल दी जाये तो उसका गुण बदल जाता है।

किसी व्यक्ति को जुखाम, खाँसी है तो उसे नीबू की शिकंजी पिला दी जाये तो रोग और ज्यादा बढ़ जायेगा और यदि उसी नीबू की चाय बनाकर दे दी जाये तो वह रोगी के लिए औषधि बन जायेगा। सेवनविधि बदल दी तो उसका गुण बदल गया। इसी तरह भगवान् को अर्पण बुद्धि से यदि कर्म किया जाये तो वह कर्म–बंधन को नष्ट कर देगा।

यह अर्पण शास्त्रों में दो प्रकार का बताया गया है – १. वस्तु समर्पण और २. क्रिया समर्पण।

वस्तु समर्पण – वस्तु समर्पण से तात्पर्य है कि कोई भी वस्तु जिसका हम अपने को मालिक समझते हैं जैसे घर–मकान, जमीन–जायदाद, मिल–फैक्ट्री, खेती और वाहन आदि कुछ भी हो, अपनी मालकियत का स्थानान्तरण (ट्रान्सफर) कर दो, समझ लो इस सबके मालिक भगवान् हैं, मैं तो उनका दास, सेवक और चाकर हूँ, यही हुआ वस्तु समर्पण।

सूरदासजी कहते हैं –

एहि बिधि कहा घटैगो तेरौ।
नन्दनन्दन करि घर कौ ठाकुर,
आपुन ह्वै रहु चेरौ।

क्रिया समर्पण – श्रीमद्भागवत में कहा गया है –

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम्।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम्।।

(भा.१.५.३२)

अर्थात त्रिताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) से मुक्ति का सरल उपाय है कि भगवान् को अर्पण बुद्धि से कर्म किया जाये। भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता. ९.२७)

चाहे तुम पढ़ते–पढ़ाते हो या व्यापार करते हो, खेती करते हो या वकालत करते हो। **'यत्करोषि'** से तात्पर्य है जो कुछ भी कर्म करते हो **'तत्कुरुष्व मदर्पणम्'** वह मुझे अर्पण कर दो। कर्म अर्पण कैसे होगा ? कर्म करने से पहले भगवान् को प्रणाम करलो। मन्त्र बोल लो – **"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"** इसका अर्थ होता है भगवान् को प्रणाम। आगे कहते हैं – **'यदश्नासि'** अर्थात् तुम जो कुछ भी खाते–पीते हो, **'तत्कुरुष्व मदर्पणम्'** मुझे अर्पण कर दो। खाना–पीना कैसे अर्पण होगा ? खाने पीने से पहले मन्त्र बोलो – "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" बस भोग लग गया। जो लोग ऐसा नहीं करते हैं, उनकी बड़ी निन्दा की गयी है।

"विना अर्पितं तु गोविन्दे यस्तु भुङ्गते नरः।
श्वान्विष्ठा समं चान्नंतोयं सुरया समम्।।"

जो लोग भगवान् को अर्पण किये बिना, भोग लगाये बिना खाते–पीते हैं, उनका खाना कुत्ते की विष्ठा की तरह गन्दा खाना है और जो कुछ वे पीते हैं दूध, कॉफी, चाय और जूस आदि वह सब मदिरा की तरह पीना है। अतः हर व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध, युवक हो या युवती, भगवान् को अर्पण करके ही खाना–पीना चाहिए। यह कठिन नहीं है, कहीं पर भी, कहीं भी आप कुछ भी खाये–पियें पहले मन्त्र बोल लें –**"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"**

आगे कहते हैं – हवन, यज्ञ, दान–पुण्य, तपस्या आदि जो कुछ भी करते हो, अपने नाम के लिए नहीं बल्कि भगवान् की प्रसन्नता के लिए **"तत्कुरुष्व मदर्पणम्"**। कैसे अर्पण होगा? यज्ञ, दान, तप आदि करने से पहले मन्त्र बोल लो– **"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय"**। ऐसा करने से आपका हर कार्य यज्ञ बन जायेगा। शरीर से, मन से, वाणी से, इन्द्रियों से और आत्मा–अहम् से अथवा स्वभाववश मनुष्य जो–जो भी कर्म करता है नारायण भगवान् को अर्पित बुद्धि से करे, यही भक्ति है, यही भागवत धर्म है –

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्धयाऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्।।

(भा.११.२.३६)

❑❑❑

कलियुग में श्रेष्ठ कौन

व्यासाचार्य पं. श्रीमहेशचन्द्रजी शास्त्री, मानमंदिर गहवरवन, बरसाना।

एक बार ऋषि लोग गंगा तट पर जिज्ञासा लेकर पहुँचे कि किस समय कौन–सा सत्कर्म महान फल देने वाला होता है। जिस समय ऋषि लोग व्यासजी के समीप पहुँचे, उस समय व्यासजी महाराज गंगा स्नान कर रहे थे, मुनियों को सुनाते हुए बोले – 'कलियुग श्रेष्ठ है।' पुनः दूसरी डुबकी लगा कर बोले – 'शूद्र ! तुम ही श्रेष्ठ हो, तुम ही धन्य हो।' यह कहकर महामुनि व्यासजी जल में फिर मग्न हो गये और थोड़ी देर में खड़े होकर बोले – 'स्त्रियाँ ही साधु हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है ?'

नित्यकर्म करके व्यासजी गंगाजी से बाहर आये तो सभी महात्माओं ने अभिवादन करके आसन ग्रहण किया।

तब सत्यवतीनंदन व्यासजी बोले – "आपलोगों का आगमन किस हेतु से हुआ है ?" मुनियों ने कहा – "संदेह निवारण के लिए आये थे, किन्तु उसे जाने दो। अभी–अभी गंगा में खड़े होकर आप जो बोले, वही समझा दीजिये। भगवन ! आपने स्नान के समय कहा था कि कलियुग श्रेष्ठ है, शूद्र श्रेष्ठ है। स्त्रियाँ साधु हैं और धन्य हैं। यदि इनका अभिप्राय गोपनीय न हो तो आप कहें।"

तब व्यासजी बोले – जो फल सतयुग में दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करने से मिलता है। उसे मनुष्य त्रेता में एक वर्ष में, द्वापर में एक मास में और कलियुग में केवल एक ही दिन–रात में प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण ही मैंने कलियुग को श्रेष्ठ कहा –

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ।।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम्।।

(विष्णुपुराण ६.२.१५,१६)

जो फल सतयुग में ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में देवार्चन से प्राप्त होता है, वही कलिकाल में कृष्ण–कीर्तन करने से मिल जाता है। इसलिए कलियुग श्रेष्ठ है।

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्।।

(विष्णुपुराण ६.२.१७)

भागवत के अनुसार कलियुग में सतयुग, त्रेता, द्वापर के लोग भी जन्म लेने की इच्छा करते हैं। क्योंकि कलियुग में भगवत्परायण भक्त बहुत होते हैं, इनके आश्रय से जीव का सहज में कल्याण हो जाता है।

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः।।

(भागवत ११.५.३८)

विवेकी पुरुष को महत्संग अवश्य करना चाहिए, महत्संग से अवश्य भक्ति–लाभ प्राप्त होगा। इसलिए व्यासजी ने कलि को श्रेष्ठ बताया।

कलियुग में जो हरिनाम स्मरण करते हैं और दूसरों से कराते हैं, वे मनुष्यों में सबसे अधिक भाग्यशाली हैं और उसी मानव का शरीर धारण करना सार्थक है।

ते सभाग्या कृतार्था नृपनिश्चितम्।
ये स्मरन्ति स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौयुगे।।

(आदिपुराण)

दूसरा प्रश्न – शूद्र क्यों श्रेष्ठ है?

द्विजातियों को ब्रह्मचर्य पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है, फिर स्वधर्माचरण से उपार्जित धन के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने होते हैं। इसमें भी व्यर्थालाप, अशुद्ध आहार, व्यर्थ यज्ञ आदि उनके पतन के कारण बनते हैं। उन्हें सदा संयम–सदाचार का पालन करना आवश्यक होता है। स्वेच्छाचार नहीं कर सकते, इस प्रकार अत्यन्त कष्ट से उत्तम लोकों की प्राप्ति करते हैं, किन्तु शूद्र द्विजों की, भक्तों की सेवा से ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिए वह अन्य वर्णों से श्रेष्ठ है, भगवत्भावभावित होकर सेवा करने से ही भागवत धर्म की सिद्धि होती है। सेवावृत्ति से ही भगवान् जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं, अहंकार भी शीघ्र नष्ट होता है, इसलिये शूद्र को श्रेष्ठ कहा।

तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः।

(भागवत ३ .६.३३)

स्त्री कैसे साधु है ?

योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा।
तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः।।

(विष्णुपुराण ६.२.२८)

स्त्रियाँ परम पति भगवान की तन, मन, वचन से सेवा (भागवत धर्म का पालन) करने से सहज ही सुदुर्लभ भगवत् प्रेम प्राप्त कर लेती हैं। इसलिए मैंने स्त्रियों को साधु कहा है। अतः जीव मात्र के सच्चे पति श्रीकृष्ण और उनके शरणागत भक्तजनों की तन, मन, वचन से सतत् सेवा करें।

थोड़ा भी श्रीठाकुरजी से इतर राग होने पर पतन की संभावना है। अमृत से भी अधिक परमप्रिय, रसमय श्रीकृष्ण–सेवा का त्याग कर कौन मूर्ख स्त्री विषय–विष को ग्रहण करेगी ? सांसारिक–विषय तो स्वप्न की तरह नश्वर, तुच्छ, मिथ्या और विनाशकारी हैं। जैसे पतङ्गों को दीपशिखा बड़ी मनोहर प्रतीत होती है, वंशी में गुँथा हुआ माँस मछलियों को आपाततः सुखद जान पड़ता है उसी प्रकार विषयी पुरुषों को विषय में सुख की प्रतीति होती है किन्तु वास्तव में वह मृत्यु का कारण है। इसलिये विषयाग्नि के ताप से बचने के लिये निरन्तर सत्संग करते हुए शास्त्र या गुरुजनों की आज्ञा का पालन करें यही सर्वश्रेष्ठ है।

– श्रीकृष्णः शरणं मम्।

❍

गहवरवन के दिव्य सुमन पंडित हरिश्चन्द्रजी

गहवरवन के दिव्य सुमन पंडित हरिश्चन्द्रजी बरसाना में श्रीजी के करकमलों द्वारा निर्मित उनकी विहार–वाटिका गह्वरवन में निवास करने वाले बहुत बड़े महापुरुष थे पंडित हरिश्चंद्र जी, जिनकी सेवा से इसी वन के महात्मा मौनी बाबा सिद्ध हुए थे। पंडित हरिश्चन्द्रजी इनसे पहले से गह्वरवन में रहते थे और मौनी बाबा ने आकर पंडितजी की सेवा किया था। उसी सेवा के प्रताप से वह इतने बड़े संत बने कि उनके शरीर से अग्नि का प्राकट्य हुआ और उन्हें पता भी नहीं चला। पंडितजी के पास हम (श्री बाबा महाराज) एक साल तक गए हैं सत्संग करने, वो बड़े सेवा निष्ठ थे। उनके पास कोई जा नहीं सकता था। सिर्फ दस मिनट के लिए हमको उन्होंने अनुमति दिया था। हमने उनसे कहा था कि बाबा ! हम आपकी सेवा चाहते हैं। वह हँस गए, बहुत बूढ़े थे। बोले – तुम क्या करोगे, हमें तो सेवा की जरुरत है नहीं।' उनका भोजन बनके आता था एक ब्रजवासी के यहाँ से, उसी को खा लेते थे दोपहर में और बर्तन मांजते थे, कटोरा धोने के लिए कुण्ड में उतरते थे, उसी समय हमको उनका दर्शन होता था। हम चाहते थे कि किसी तरह हम उनके पास पहुँचें। वो सारी रात जागते थे। हम कुण्ड के उस पार से देखते थे कि उनकी कुटिया में दीपक जल रहा है, उस समय बिजली नहीं थी, केवल दीपक जला करता था। एक दिन हमने पूछा कि बाबा आप सारी रात जागते हो तो वे बोले – 'हाँ।' हमने कहा – 'हम आपकी सेवा करना चाहते हैं।' तो कहने लगे – 'हमको जरूरत नहीं है। भोजन आता है, दो रोटियाँ कोई ब्रजवासी दे देता है, उतनी देर के लिए किवाड़ खुलती है और उसके बाद तो हमारी किवाड़ बंद रहती है।' तो हमने कहा कि कुछ तो हमें आप सेवा बताओ तो वह बोले – 'तुम एक काम कर सकते हो – अंगीठी में राख भरी जाती है, तुम राख फेंक करके कोयला भर देना, इतनी देर के लिए आ सकते हो।' (वो बहुत वृद्ध थे तो सारी रात अंगीठी में हाथ सेंकते रहते थे।)

हमने कहा – 'ठीक है।' हमने सोचा कि इतनी देर के लिए जाना पड़े तो भगवान् की कृपा है, संतों का दर्शन ही मुश्किल है। अतः हम संध्या को जाते थे, उनकी अंगीठी में से राख खाली करके कोयला भर देते थे। वह बहुत वृद्ध थे किन्तु उनकी निष्ठा ऐसी थी कि शौच करने गह्वरवन में नहीं जाते थे, दोहनी कुण्ड की ओर जाते थे। उनको संग्रहड़ी का रोग था, कई बार शौच जाना पड़ता था, हाथ काँपता रहता था। जाड़े में रात भर अंगीठी के पास हाथ सेंकते रहते थे। अंगीठी में कोयला डालने का काम उन्होंने हमें दिया था। हमारा इतना प्रेम और श्रद्धा थी पंडितजी में कि जब उनका शरीर छूटा, उनका दाहसंस्कार हुआ था दोहनी कुण्ड पर, हम बहुत दिनों तक वहाँ जाते रहे और रोते रहे। जबकि हमारे पिताजी का जब शरीर छूटा था तब हम नहीं रोये थे।

जब हम ब्रज में नये–नये आये थे तो एकबार किसी महात्मा के पास गये थे, वो बड़े भजनानंदी थे, सारी रात भजन करते थे। हम गये उनके पास, श्रद्धा से प्रणाम किया। वो बोले – 'कैसे आये हो ?' हमने कहा – 'महाराज ! भजन कैसे किया जाता है, आप हमको बताओ।' तो उन्होंने कहा – 'तुम सारी रात जप करो, ये शरीर भजन के लिए मिला है, भजन करो नहीं तो प्राण छोड़ दो।' हम वहाँ से आये और सीधे पंडितजी के पास जाकर हमने कहा – 'बाबा आज हमने एक दिव्य महापुरुष को देखा। हमने पंडित जी से सब बताया तो उन्होंने कहा कि अब तुम कभी मत जाना वहाँ, हमने कहा – क्यों ? वो बोले जिसमें कर्तृत्व है, वो भजन नहीं है। तुम सारी रात भजन करोगे तो कर्तृत्व पैदा होगा। तुम हमारी बात मानो, कभी मत जाना उनके पास तो ,हम कभी नहीं गये। फिर उन्होंने वल्लभाचार्य जी का मत सुनाया कि जीव को जो कुछ मिलता है वह सेवा से मिलता है। जो भजन करते हैं और भजन करने का बल रखते हैं उनको कुछ नहीं मिलता। पंडित जी वल्लभकुल के वैष्णव थे। ऐसे महापुरुष जिनकी कृपा भी हमको थोड़ी मिली थी।

उनके पास हम जाते थे अंगीठी में कोयला भरने और उस अंगीठी में जो राख थी उसको फेंक देते थे और उसको कोयले से भर देते थे, वे सारी रात उसको तापते थे। उनकी कुटिया के भीतर एक कमरा और था, उसमें कभी–कभी वे जाते थे और चले आते थे। हमने एक दिन देखा वह भीतर कमरे में हैं, वहाँ कुछ नहीं था। हमने सोचा था ठाकुर जी होंगे, सेवा होगी, प्रणाम करने जाते होंगे। वहाँ कुछ नहीं मिला तो हमने पूछ लिया – 'बाबा ! वहाँ आप जाते हैं, किसलिए जाते हैं ?' वे गंभीर हो गए और बोले – 'तुम क्या समझते हो ?' हमने कहा कि ठाकुर जी होंग, आप प्रणाम करने जाते होंगे। उन्होंने कहा – 'ठीक समझा तुमने, हम केवल प्रणाम करने जाते हैं।' हमने कहा – कोई चित्र या विग्रह ठाकुरजी का तो है नहीं, आप किसको प्रणाम करते हैं ? तो वो बोले – हमारी कोई गुप्त बातें है, तुम पूछते हो तो हम बताते हैं। हमारे यहाँ इस कमरे में बहुत दिन पहले हमारे गुरुदेव आये थे और उनके साथ उनकी स्त्री गोसांइनजी भी थीं। वे आये थे अतः यहाँ कुछ दिन रुकेगें तो हमने अपनी कोठरी खाली कर दिया। इनकी इच्छा भई है तो हम कमरा खाली करके चले गए। वो और उनकी स्त्री यहाँ रुके, उसके बाद जब वो चले गए तो हम कमरे में घुसे तब वहां गुसांइनजी की टूटी–फूटी चूड़ियाँ मिली, हमने उनको रख लिया, वही चूड़ियों के टुकड़े हैं जिनको हम दंडवत करने जाते हैं, उनको हमने आले में रख लिया। हम (श्री बाबा महाराज) समझ गए, इनका इतना भाव है। पंडितजी बोले कि वह साक्षात् स्वामिनीजी (श्रीजी) थीं जो चूड़ियों के टुकड़े देने के लिए गह्वरवन आईं थीं। हमारे यहाँ आचार्य को भगवान् माना जाता है, उनकी अर्धांगिनी को स्वामिनीजी माना जाता है। अतः जब स्वामिनीजी गईं तो इन टुकड़ों को छोड़ गयीं, तब से मैं इनकी आराधना करता हूँ।

इस कोटि के महापुरुष थे वे और उनकी सेवा से ही मौनी बाबा सिद्ध बने। उनको संग्रहणी रोग था फिर भी उन्होंने कभी औषधि नहीं ली, बोले – 'हमको इस रोग से फायदा है, हम सारी रात जाग लेते हैं। ये बीमारी न होती तो शायद न जागते।' उनको एक टॉर्च की जरुरत थी। उन्होंने कहा – तुम हमको कोई टॉर्च ला सकते हो, हमने कहा कैसी टॉर्च चाहते हैं आप। उस जमाने में प्लास्टिक की जो टॉर्च चलती थीं वो जल्दी खराब हो जाती थीं। बांसठ साल पुरानी बात है, उस जमाने में पीतल की जो पुरानी टॉर्च चलती थी, वो बंद हो गई थी। प्लास्टिक की चलने लग गई थी, तो वो बोले – 'कहीं से तुम हमको पीतल की टॉर्च लाओ, जिसका स्विच नहीं बिगड़ता है।' हम यहाँ से गए, सारे वृन्दावन में ढूँढ़ा, मथुरा में खोज की लेकिन पीतल की टॉर्च नहीं मिली और हम सोच बैठे थे कि जब तक नहीं मिलेगी, वापस नही आयेंगे। गोवर्धन में किसी पुरानी दुकान पर वो टॉर्च मिल गई। उसको लेकर हम आये। हमने उनको टॉर्च लाके दिया तो वे बड़े खुश भये और बोले –'तुम क्या चाहते हो ?' हमने कहा कि गहवर वन का वास चाहिए। वे बोले – 'ठीक है मिल गया तुमको।' ये उनका आशीर्वाद था। तब से हम गह्वरवन में ही

हैं। इसका वास हमको मिला उन्हीं के आशीर्वाद से, सिर्फ एक टॉर्च की सेवा से।

पंडितजी सारी रात जागते हुए अपनी खिड़की पर बैठकर गहवर वन की लताओं–कुंजों को निहारा करते थे। एक बार मैंने पूछा कि आप सारी रात जागकर इन लताओं को क्यों देखा करते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया – 'गहवरवन को राधारानी ने अपने हाथों से स्वयं बनाया है। आज भी राधारानी यहाँ लीला किया करती हैं, मैं इसी भाव से रात–रात भर इन लताओं को निहारता हूँ कि कब श्रीजी इन लताओं से प्रगट होकर दर्शन देंगी।'

उनके रात्रि जागरण के सम्बन्ध में मैंने एक बार जिज्ञासा की तो उन्होंने उत्तर दिया था कि मेरे पिताजी किसी राजा के गुरुदेव थे। राजा साहब भक्त थे और मेरे पिता जी का बहुत सम्मान करते थे। वह रात भर सोते नहीं थे और अपनी महल की छत पर टहला करते थे। एक बार मैं उनके पास रात को पहुँच गया, गुरुपुत्र होने के कारण पहरेदारों ने मुझे रोका नहीं और मैं सीधे राजा साहब की छत पर पहुँच गया। राजा साहब ने पूछा कि आप यहाँ कैसे आये तो मैंने कहा आप रात भर सोते नहीं हैं, जागते रहते हैं, इसका कारण जानने के लिए मैं आपके पास आया हूँ। राजा साहब ने मेरी तीव्र उत्कंठा को देखकर कहा कि आज तक किसी और को मैंने यह रहस्य नहीं बताया किन्तु आप मेरे गुरुपुत्र हो, इसलिए आपको बताता हूँ – रात भर मैं छत से आकाश में नक्षत्र–मण्डल को देखता रहता हूँ, आसमान में अनन्त तारे

हैं, आकाश गंगा में कितने लोक हैं इनकी कोई गणना आज तक नहीं कर पाया, इसको देखकर मैं भगवान् के अद्भुत ऐश्वर्य और कालशक्ति का चिन्तन करता हूँ कि मनुष्य–जीवन क्षणभंगुर है, सिर पर हर समय काल सवार है, पता नहीं कब इस जीवन का अन्त हो जाय। इसलिए मैं रात भर जागकर ईश्वर–स्मरण करता रहता हूँ।

पंडित जी बोले कि राजा साहब के जीवन की इस घटना से मुझे बहुत बड़ी शिक्षा मिली, इसलिए मैं भी गहवरवन में सारी रात जागकर यहाँ की लताओं को निहारते हुए श्रीजी का चिन्तन करता रहता हूँ। उन्होंने यह भी कहा था कि मुझे बहुत–सी सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं लेकिन यहाँ आकर मैंने उन्हें राधा सरोवर (गहवर–कुण्ड) में प्रवाहित कर दिया। कभी–कभी स्थानीय ब्रजवासी उनसे कहते थे कि बाबा ! मेरी भैंस खो गई है। पंडित जी कहते थे कि चिन्ता मत करो, भैंस मिल जाएगी और उनके आश्वासन से ब्रजवासियों को खोई भैंस पुनः मिल जाती थी। एकबार भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्वान, पंडितजी के पास सत्संग हेतु पधारे। ब्रज में उद्धव–गोपी संवाद के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि जब उद्धव जी गोपियों के सामने ज्ञान और योग की चर्चा करने लगे तो गोपियों ने कृष्ण–प्रेम की महिमा का बखान करते हुए उनके सामने ऐसे तर्क प्रस्तुत किये कि उद्धव जी गोपियों के प्रति नतमस्तक हो गये और विधाता से उनकी चरण–रज प्राप्ति की प्रार्थना करने लगे। उन विद्वान की इस बात को सुनकर पंडित जी बोले – 'गोपियों ने कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किये थे, उद्धवजी ने गोपियों की सर्वोच्चतम प्रेमावस्था का जो अवलोकन किया था, उसी का यह प्रभाव था कि वे अपने ज्ञान–गर्व को खंडित कर बैठे और ब्रज की लता–औषधि, वनस्पति बनकर उनकी चरणरज–प्राप्ति की आकांक्षा करने लगे

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्व,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

(भागवत १०.४७.६१)

"महारासकाल में जब ब्रजगोपियों के मध्य से श्रीश्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये तब गोपीजन कृष्ण–विरह में लता–पता, पशु–पक्षी, पेड़–पौधों आदि से श्रीकृष्ण को पूछती–पुकारती हुईं वन–वनान्तरों में भटक रहीं थीं।" गोपियों की इस भाव–स्थिति को पंडितजी महाराज ने एक पद–रचना में लिखा है –

रंगी त्रिभंगि श्याम के अपांग रंग ध्यान में,
विचित्त पूछती फिरैं द्रुमान सों छपान में,
वियोग वह्नि सों भरी घरी उठैं उफान में।
पुकारतीं हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।
नवेलि हे चमेलि तू प्रफुल्ल है लतान में,
बिना पिया मिले अरी न फूल हों हियान में,
बता कहाँ कन्हाई री हमें न चौन प्रान में।
पुकारती हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।
रसाल हे तमाल हे निवास तीर्थथान में,
परोपकार धार कै तनु तपो वनान में,
कदम्ब उच्च तू समर्थ दूर के दिखान में।
पुकारती हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।
अभीर एक पूतना पवित्र प्रेम तान में,
भई जु एक बाल नन्दलाल के प्रमान में,
बमार चक्र एक हो लगी शिशु उड़ान में।
पुकारती हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।
भुजा धरे इकांगना इकालि अंश थान में।
कहै ललाम मो गति निहार री पयान में,
तिया पिया बनी घनी धनांग भावनान में।
पुकारती हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।
इकालि कालिया भई द्वितीय नृत्यगान में,
प्रवीन श्याम है गई शिरो पदांक दान में,
कलिन्द नन्दिनी तटै सुधी न खान–पान में।
पुकारती हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।
भये न व्यक्त ढूँढ़ती फिरी सबै वनान में,
मिलि सबै मतौ कियो गुणानुवाद गान में,
भई विहाल गीत गा रही अलापनान में।
पुकारती हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।
प्रकट न तौ हु नन्द के किशोर साधनान में,
निःसाधना भई कियो विलाप सुस्वरान में,
व्रजेन्द्र चन्द्र आ मिले कदम्ब गोपिकान में।
पुकारती हरि–हरि हरी–हरी लतान में।।

पंडितजी ने बरसाने की महिमा के सम्बन्ध में 'वृषभानुपुर शतक, 'वल्लभ अंग माधुरी' नामक ग्रन्थ की भी रचना की।

गौ–सेवा से गोविन्द–प्राप्ति

श्री बाबा महाराज द्वारा "गौ–महिमा सत्संग" से संकलित

हम लोगों को सुदृढ़ निष्ठा के साथ चलना चाहिए कि प्राण भले ही चले जाएँ लेकिन जो जहाँ है, अपनी सेवा में अड़ा रहे, उसको छोड़े नहीं, प्राण छूट जाएँ लेकिन सेवा नहीं छूटे, इसका परिणाम होगा कि एक दिन अवश्य श्रीकृष्ण आयेंगे (सेवाभावपरिभावित हृदयकमल में नित्य निवास करेंगे गोपालजी) क्योंकि भगवान् भाव (भक्ति) के आधीन हैं। गोपालजी ब्रज में केवल गायों के लिए ही आये। छीतस्वामीजी ने लिखा है (ये उनका बड़ा अमर पद है) –

आगे गाय पाछे गाय, इत गाय उत गाय।
गोविंदा को गायन में बसिबो ही भावै।
गायन के संग धावै, गायन में सचु पावै।
गायन की खुर रज अंग सों लगावै।।
गायन सों ब्रज छायो, वैकुण्ठहु बिसरायो।
ग्वालन के हेतु गिरि कर लै उठावै।
छीतस्वामी गिरिधारी विट्ठलेश वपुधारी।
ग्वारिया को वेष धर ब्रज में जु आवै।।

जहाँ गाय हैं वहीं श्रीकृष्ण हैं। गायों में ही गोपाल को सुख (सचु) मिलता है। ब्रज में जहाँ जाओ वहीं गायें हैं। वैकुण्ठ छोड़ दिया कृष्ण ने गायों के लिए, लक्ष्मीजी भी तरस रही हैं –

कमलाहू तरसत रहीं, हम न भईं ब्रज गाय।
राधा लेती दोहनी, मोहन दुहते गाय।।

ब्रजवासियों की रक्षा से पहले गायों की रक्षा की गोपाल ने। छीतस्वामी जी कहते हैं कि विट्ठलेश ही हमारे गुरु हैं, वही कृष्ण हैं। गायों के लिए कृष्ण ग्वारिया बन गये। सेवा निष्ठा से करनी चाहिए, अवश्य ही गोविन्द की प्राप्ति होती है गायों की सेवा से। भगवान् की प्रतिज्ञा है–

"गायन सों ब्रज छायो, वैकुण्ठहु बिसरायो।
ग्वालन के हेतु गिरि कर लै उठावै।"

जहाँ गायें हैं वहाँ गोपाल अवश्य हैं। इसलिए जो लोग गौ–सेवा करते हैं, उनकी 'निष्ठा' हमलोगों को बढ़ाना चाहिये, परिहास में भी नहीं रोकना चाहिए। वो जीभ, हाथ कट जाएं जो उनके उत्साह को ढीला करें।

गौ–सेवा का चमत्कार

छान्दोग्योपनिषद् में 'चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ खण्ड में' कथा (वैदिक–कथा) आती है – एक जाबाली नाम की स्त्री थी, छोटेपन में उसका विवाह हुआ था, विवाह के कुछ दिन बाद ही उसके पति मर गये थे, मरने के पहले ही गर्भ स्थापित हो गया था, तो कोई जान नहीं पाया कि ये बच्चा किसका है। धीरे–धीरे कुछ समय बाद वह बच्चा ऋषिबालकों के साथ खेलने लगा और पढ़ने के लिए उन ऋषिकुमारों के साथ–साथ जाने लगा, लेकिन उसको गुरुदेव पढ़ाते नहीं थे। पुराने समय में एक संस्कार था – 'जिसका जनेऊ है वही वेद पढ़ सकता है।' उस बालक का नाम था 'सत्यकाम'। माँ के पास गया और बोला – "माँ ! अब मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, गुरुकुल में जाऊँगा, वहीं रहूँगा। गुरुदेव पूछेगें– तुम्हारा क्या गोत्र है? तो मैं क्या कहूँगा।" माँ बोली– "बेटा, हमें कुछ पता नहीं कि हमारा क्या गोत्र है?" बालक – "क्यों माँ ? तुम्हें तो पता होना चाहिये।" माँ – "मैं तो केवल सेवा करती थी। तेरे पिता ने सेवा में लगा रखा था। जवानी में तू मेरे गर्भ में आया। मैं नहीं जानती हूँ बेटा कि तेरा गोत्र क्या है। मैं अपना नाम बता सकती हूँ क्योंकि मेरे पिता 'जाबाली ऽ ऽ ऽ ! ओ जाबाली ऽ ऽऽ !!' कहकर बुलाते थे। तेरा नाम है – 'सत्यकाम',

जाबाली का लड़का जाबाल।'' इसलिये कोई पूछे तो तू अपना नाम 'सत्यकाम जाबाल' बता देना। जाबाली का लड़का जाबाल।" बालक बोला – "अच्छा माँ ! मैं जाऊँगा जरूर, पढ़ावें चाहे न पढ़ावें।" निष्कपट व्यक्ति में आत्म–शक्ति होती है, उसके सब पाप जल जाते हैं। विद्याध्ययन के लिए तीव्र उत्कण्ठा से बालक सत्यकाम गुरुदेव हरिद्रुम गौतम के पास गया और कहा – "गुरुदेव! मैं यहाँ रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, रहूँगा, आप आज्ञा दो।" गुरुदेव बोले – "अरे ! तेरा गोत्र क्या है ?" वो लड़का बोला – "गुरुदेव ! मैं अपना गोत्र नहीं जनता हूँ।" गुरुदेव ने कहा – "तूने अपनी माँ से नहीं पूछा ?" बालक बोला – "मैंने पूछा था माँ से, वो बोलीं कि मैं तो केवल सेवा करती थी और तेरे पिता से पूछ भी नहीं पाई कि तुम किस गोत्र के हो ? तो मैं नहीं जानती। मेरा नाम जाबाली है, तू सत्यकाम है। जाबाली का लड़का जाबाल, 'सत्यकाम जाबाल' कह देना। तेरे भाग्य में जो होगा वही होगा।" सत्यकाम जाबाल की सरल–सहज वाणी सुनकर गुरुदेव बोले – ब्राह्मण ही इतनी स्पष्ट, सरल, निष्कपट बात कह सकता है, तू ब्राह्मण है, ब्रह्मज्ञान का अधिकारी है। जो निष्कपट है वो भगवान् का भक्त है, ब्राह्मण है, सब कुछ है।" गुरुदेव ने आज्ञा दे दिया – "हे सौम्य ! जा, समिधा (यज्ञ की लकड़ी) ला। मैं तुझे दूँगा ब्रह्मज्ञान।" गुरुदेव ने यज्ञोपवीत किया और ऋषि–समाज की परवाह नहीं किया।

ब्राह्मण (ब्रह्म को जानने वाला) सरल, निष्कपट होता है। कपटी, पापी लोग सरल नहीं हो सकते।

सत्यकाम ने कहा – "भगवन् ! आपने मुझे अपना लिया, हम धन्य हो गए, अब आप आज्ञा करें।"

गुरुदेव बोले – "अब तुम जाओ – ये चार सौ हमारे पास बूढ़ी गैयायें (कमजोर, उपेक्षित) हैं। दुबली समझ के लोगों ने छोड़ दिया है, इनकी सेवा करो, जब तक ये हजार न हो जायें, तुम वापस मत आना।" बालक सत्यकाम बोला – "गुरुदेव ! मैं लौटूँगा नहीं जब तक हजार नहीं हो जाएँगी।" एक साल तक दिन–रात गौओं की सेवा में लगा रहा और एक साल में एक हजार गायें हो गईं। जब एक हजार गायें हो गईं तो वे गायें अपने–आप बोलीं –

बेटा सत्यकाम ! हम एक हजार हो गईं हैं, हमको ले चलो आचार्यकुल में यानि गायें आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम ब्रह्मज्ञान के अधिकारी बन गए हो। मार्ग में लौटते हुए क्रमशः चार रात्रियों में ब्रह्मज्ञान के चतुष्पादों को प्राप्त करके सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान मिल गया। जब गुरुदेव के पास एक हजार गायों को लेकर पहुँचा तो गुरुदेव ने देखा कि सत्यकाम के चेहरे पर ब्रह्मतेज आ गया है। गुरुदेव बोले – "बेटा ! तू तो ब्रह्मवेत्ता बन गया। अब क्या उपदेश दें ?" सत्यकाम बोला – गुरुदेव ! मैं आपकी शरण में हूँ, ये पढ़ने–लिखने से नहीं होता है, आप जैसे आचार्य–गुरुओं से सुनने के बाद ही विद्या सफल होती है, इसलिए आप हमें उपदेश दें।"गुरुदेव ने कहा – "उपदेश तो मैंने उसी दिन दिया था जब तू निष्कपट होकर हमसे बोला था, अब तो तुझको सब ज्ञान प्राप्त हो गया गौ–सेवा से, विद्या पूर्ण हो गई है, अब हम क्या तुझको दें ?" इस प्रकार निष्ठापूर्वक गौ–सेवा करने से स्वतः ब्रह्मविद्या (श्रीकृष्ण–ज्ञान) अर्थात् साक्षात् गोविन्द की प्राप्ति हुई।

इसलिये सरल–सहज, निष्कपट स्वभाव में ही विशुद्ध ज्ञान, भक्ति की प्राप्ति होती है। जो गौ–भक्त होता है उसको सारे देवता सहायता करते है, ब्रह्मज्ञान देते हैं। गायों की सेवा से अपने–आप दिव्य ज्ञान प्राप्त हो जाएगा, गायें स्वयं तुमको आचार्य बनके उपदेश देगीं। गौ–सेवा से अनन्त सुख (आनन्द) की प्राप्ति हो जाती है। पहले ब्रज में इतनी सुख–समृद्धि थी कि दूध–दही–माखन की नदियाँ बहती थीं, दिन–रात गान–नृत्य होता था, ये सब गौ–सेवा का ही पुण्य–प्रभाव था।

क्रमशः....

❑❑❑

भक्त परमेष्ठी दर्जी

(श्रीबाबामहाराज द्वारा एकादशी–सत्संग से संकलित)

भक्त परमेष्ठी दर्जी थे। वह दिल्ली में रहते थे। उनके परिवार में उनकी पत्नी, एक कन्या और दो पुत्र थे। गृहस्थ–जीवन में रहते हुए भी वह दिन–रात भजन किया करते थे। परिवार के जीविकोपार्जन हेतु वह थोड़ी देर को सिलाई मशीन चलाकर कपड़े सिला करते थे, उसी से उदर पूर्ति हेतु आटा–दाल उपलब्ध हो जाता था और वह उतने में ही सन्तुष्ट रहकर अपना सारा जीवन भजन में बिताया करते थे। दिन–रात वह कीर्तन किया करते थे। दिल्ली में कोई बादशाह था, उसके पुत्र का विवाह होने वाला था। उसने अपने मंत्रियों से पूछा कि दिल्ली में कपड़े सिलने वाला सबसे अच्छा कारीगर कौन है ? उन्होंने बताया कि ऐसा तो परमेष्ठी है। बादशाह बोला – मुझे तकिया बनवाने हैं, जिन पर हीरा,मोती,जवाहरात,नीलम आदि जड़े हों, ऐसा तकिया बनाया जाये, जो दुनिया में कहीं न हो। लोगों ने कहा – परमेष्ठी बढ़िया सिलाई करते हैं लेकिन वह ज्यादा काम नहीं करते हैं। बादशाह ने पूछा – 'क्यों ?' उसके सलाहकार बोले – 'वह अधिकतर समय अपने अल्लाह (भगवान्) की बंदगी (भजन कीर्तन) में लगे रहते हैं इसलिए वह ज्यादा काम लोगों से स्वयं नहीं लेते।' बादशाह ने कहा – 'अरे, वह काम लेगा कैसे नहीं, हमारी दिल्ली में रहता है और मैं बादशाह हूँ।' बादशाह ने सिपाहियों को आज्ञा दी तो सिपाही परमेष्ठी के यहाँ पहुँचे और बोले – परमेष्ठी जी ! आपको बादशाह ने बुलाया है, जल्दी उनके महल चलिए। परमेष्ठीजी को विवश होकर जाना पड़ा। बादशाह के दरबार में उपस्थित हुए तो वह बोला – 'परमेष्ठी ! तुम्हें दो तकिया बनाने हैं, मैंने ऐसा सुना है कि तुम बहुत भजन कीर्तन करते हो तो कोई हर्ज नहीं है, तुम्हारे लिए दो महीने का समय दिया जाता है। दो महीने के भीतर तकिये बनाकर तैयार कर देना।' निरंकुश मुस्लिम बादशाह के आगे परमेष्ठीजी को हाँ कहना पड़ा और वह तकिया बनाने के सभी वस्त्र और उसमें जड़ने के लिए हीरे, मोती, जवाहरात आदि रत्न लेकर अपने घर पर आ गये। जब घर पर आये तो सारा मामला जानकर उनकी स्त्री ने कहा कि इसे शीघ्र से शीघ्र बना दीजियेगा क्योंकि यह तानाशाह बादशाह है, समय पर यदि इसका काम पूरा न किया तो फाँसी की सजा दे देगा। यह किसी साधारण आदमी का काम नहीं है। परमेष्ठी जी अपनी पत्नी से बोले– 'तुम ठीक कहती हो। अब प्रतिदिन वह तकिया बनाने के काम में लग गये।' उनकी स्त्री जानती थी कि यदि यह कीर्तन में लग जाएँगे तो फिर कोई दूसरा काम नहीं करेंगे। इसलिये उसने अपने पति को शीघ्र से शीघ्र बादशाह का कार्य समाप्त करने की सम्मति दी थी। वह भी भक्त थी इसलिए पतिदेव से बहुत अधिक आग्रह किया तो परमेष्ठी जी ने समय पर दोनों तकिये बना लिए, बादशाह द्वारा दिये समय से दस–पन्द्रह दिन पहले ही तकिये बनाकर तैयार कर दिये। इस बीच जगन्नाथपुरी की रथ यात्रा का समय आया। परमेष्ठीजी एक साल पहले ही पुरी जाकर जगन्नाथजी के दर्शन कर आये थे। अतरू वह अपने स्थान पर बैठकर जगन्नाथजी की पहले देखी हुई रथ यात्रा का ध्यान करने लगे। परमेष्ठीजी ध्यान में ऐसा डूब गये कि उन्हें यह होश नहीं रहा कि मैं जाग रहा हूँ कि सो रहा हूँ। ध्यान में उनको जगन्नाथजी का साक्षात् दर्शन हुआ, उन्हें साक्षात् दिखाई पड़ा कि जगन्नाथजी का रथ आ रहा है। लोग उच्च स्वर से "जय जगन्नाथ, जय जगन्नाथ" कहकर चिल्ला रहे थे। हजारों लोग नाच रहे थे, कीर्तन कर रहे थे। उसी समय परमेष्ठी जी ने देखा कि जगन्नाथजी के नीचे का वस्त्र फटा तो लोग दौड़े – तकिया लाओ, तकिया लाओ, कहीं ऐसा न हो कि तकिया के बिना प्रभु का विग्रह पीछे की ओर गिर जाये, लोग इस प्रकार कहने लगे। परमेष्ठी जी को तो यह घटना ध्यान में प्रत्यक्ष की भाँति दिखाई पड़ रही थी। लोगों की पुकार सुनकर परमेष्ठी जी ने बादशाह के लिए जो तकिया बनाए थे , उसमें से एक उन्होंने उठाया और जल्दी से बोले – अरे लो–लो, ये तकिया लेकर शीघ्र ही प्रभु के नीचे लगाओ। उनसे तकिया लेकर लोगों ने प्रभु के नीचे लगा दिया और रथ आगे निकल गया। थोड़ी देर बाद परमेष्ठी जी को होश आया तो उन्होंने देखा कि मैं तो अपने घर में बैठा हूँ। उनकी पत्नी ने पूछा – कहो, क्या बात है ? परमेष्ठी जी ने पूछा – वह जो रथ था, कहाँ चला गया ? अभी मेरे सामने से गया है। हजारों लोग 'जय जगन्नाथ, जय जगन्नाथ' कहकर चिल्ला रहे थे। मैंने तो भगवान् के लिए तकिया भी दिया था। अब परमेष्ठी जी ने आँख खोलकर

देखा तो तकिया गायब था। ध्यान में उन्होंने जो तकिया प्रभु को चढ़ाया था, वह उन्होंने स्वीकार कर लिया, उसे ले लिया था। सच्चा प्रेम होगा तो तुम सोते हुए भी प्रभु को कुछ चढ़ाओगे तो वह ले लेंगे। परमेष्ठी जी ने जो तकिया प्रभु को चढाया था वह बादशाह का था, उसकी कीमत लाखों–करोड़ों रुपए की थी और उसे प्रभु ने ले लिया था, लेते समय उन्होंने यह नहीं सोचा कि बादशाह का तकिया गायब होने पर वह परमेष्ठी की पिटाई करेगा।

बादशाह द्वारा तय किये गये तकिया–निर्माण की अवधि पूरी होने पर सिपाही लोग आये और बोले–तकिया लेकर चलो बादशाह के पास। अब परमेष्ठीजी की पत्नी तो बहुत घबराई और बोली – तुम कह रहे हो कि तकिया ठाकुर जी को चढ़ा दिया। अब एक तकिया लेकर क्या करोगे ? परमेष्ठी जी बोले – तो मैं क्या करूँ, अब एक ही तकिया लेकर बादशाह के पास जाऊँगा और उससे साफ–साफ कह दूंगा कि एक तकिया तो प्रभु ने ले लिया, अब चाहे आप मारें या छोड़ें। पत्नी ने कहा – ठीक है तो जाओ।

भक्ति करने पर उसका पुरस्कार या दण्ड तो भोगना पड़ता है। भक्ति इतनी आसानी से थोड़ी न मिलती है। किसी महापुरुष ने कहा है –

"राम नाम की लूट है लूट सके तो लूट।
अन्तकाल पछताएगा जब प्राण जायेंगे छूट।।"

तो कलियुग में किसी ने ऐसा दोहा बना दिया।

अरे, राम नाम की लूट है, कैसे लेगा लूट।
जूता इतने पड़ेंगे, टांट जायेगी फूट।।

दुष्ट लोग कीर्तन नहीं करने देते हैं, कहते हैं बंद करो–बंद करो, हल्ला करके हमारे कान फोड़ दिये। इसलिए कीर्तन करने पर तो कलियुग में पहले टांट (खोपड़ी) ही फोड़ी जाती है, पीछे फिर चमत्कार होता है। उधर जब परमेष्ठी जी बादशाह के दरबार में पहुँचे तो वह बोला – परमेष्ठी ! मेरा तकिया लाओ। परमेष्ठी जी ने एक तकिया दे दिया, उसे देख कर बादशाह बहुत खुश हुआ और बोला ऐसा तकिया बनाने वाला तो दुनिया में कोई है ही नहीं, ऐसा नक्शा, ऐसी डिजाइन तो कोई और नहीं बना सकता है। अच्छा हाँ, अब दूसरा लाओ। अब तो परमेष्ठी जी चुप रहे तो बादशाह बोला चुप क्यों हो ? परमेष्ठी जी – बादशाह जी ऐसा है कि मैं ध्यान में जगन्नाथ जी की रथ यात्रा का दर्शन कर रहा था। मैंने तकिया प्रभु को दे दिया और उन्होंने ले लिया। बादशाह खीझ कर बोला – क्या कहता है, प्रभु ने ले लिया, अरे बदमाश, चोर ! हीरा–मोती देख कर तेरी नीयत खराब हो गयी, कहता है प्रभु ने ले लिया। अरे सिपाहियों, इसको जेल में ले जाकर बंद कर दो और पिटाई करो। प्रभु कहाँ है ?

बादशाह तो मुसलमान था, उसे क्या मालूम कि प्रभु कौन है? जगन्नाथ जी कौन हैं? ये लोग तो वैसे ही हिन्दू धर्म के घोर शत्रु और मूर्ति भंजक होते हैं। मुसलमान शासक से परमेष्ठी जी ने बताया – प्रभु तो जगन्नाथ पुरी में हैं। बादशाह – बुला उसे यहाँ गवाही देने के लिए, मेरे सामने आये, मैं भी तो देखूं, कौन है प्रभु तेरा ? मेरा तकिया कैसे ले सकता है प्रभु ? उसको डर नहीं है मेरा, मैं तेरे प्रभु को फांसी पर चढा दूँगा? कौन है प्रभु ?

परमेष्ठी जी – वह तो जगन्नाथजी हैं, पुरी में रहते हैं।

बादशाह – उसको बुलाओ यहाँ, मैं उसको फाँसी दूंगा, बिना मेरे हुक्म के उसने मेरा तकिया कैसे ले लिया, कैसा भगवान् है, वह तो चोर है, बेइमान है।

परमेष्ठी जी मन में सोचकर हँसने लगे कि हाँ, हमारा भगवान् चोर तो है ही, अब करें क्या, इस मुसलमान राजा को कैसे समझायें, फिर वह बोले– 'हमारा प्रभु यहाँ नहीं आयेगा,आप हमें फांसी दे दो। बादशाह ने सिपाहियों को आदेश दिया – ले जाओ इसे और जेल में बंद कर दो। दो चार दिन तक इसकी पिटाई करो, खाने को कुछ मत दो, इसके बाद इसे फाँसी दे देना। मैं भी तो देखूँ कैसा प्रभु है तेरा? चोर है वह तो। ऐसा कहकर राजा ने परमेष्ठी जी को जेल में बंद करवा दिया। परमेष्ठी अपने घर पर प्रतिदिन ठाकुर जी की सेवा करते थे, भोग लगाते थे लेकिन जब जेल में बंद हो गये और सेवा नहीं कर पाए तो प्रभु से वो बोले हे नाथ ! मैं तुम्हे रोज भोग लगाता था, जल पिलाता था। अब तुम्हारी सेवा में जरूर गड़बड़ी आ गयी होगी। सेवा में बाधा होने की आशंका व दुःख के कारण वह करुण–क्रन्दन करते हुए गाने लगे –

पड़ा हूँ जेल में सेवा तुम्हारी कर नहीं पाऊँ।
अँधेरी कोठरी में बंद मैं टेरूँ यहाँ तुमको।

हे गोविन्द ! ये जेल की अँधेरी कोठरी है, मैं यहाँ तुमको बुला रहा हूँ – गोपाल ! हे गोपाल !!

नहीं दीखे यहाँ कुछ भी मैं चाहूँ देखना तुमको।

यह जेल की अँधेरी कोठरी है, यहाँ कैदियों के लिए दीपक भी नहीं है और यहाँ ऐसा कोई भी नहीं है जिसको मैं अपना दुखड़ा सुनाऊँ। हे नाथ ! मुझे जन्म और मृत्यु का भय नहीं है।

जिऊँ चाहे मरूँ मैं नाथ सेवा ही सदा पाऊँ।

इस तरह से परमेष्ठी जी आर्तभाव से जेल में प्रभु से विनय कर रहे थे। इसको कहते हैं भक्ति, यदि ऐसे भक्त हम बन जाएँ तो गाँव क्या चीज हैं, हम सारे भारत को हिला सकते हैं। अतः ठोस बनना चाहिए, मुसीबत कुछ नहीं है। जब परमेष्ठीजी का करुण गीत समाप्त हुआ तो उन्होंने क्या देखा कि उस अँधेरी कोठरी का फाटक खुलता है और तीव्र प्रकाश का उदय होता है। परमेष्ठीजी सोचने लगे कि रात को फाटक कैसे खुल सकता है। इतनी रोशनी कैसे आ रही है। इतने में उन्होंने देखा कि उस प्रकाश में जगन्नाथ जी (श्रीकृष्ण) आ रहे हैं और उन्होंने पुकारा – बाबा ! तू कहता था कि हमें सेवा दो। मेरे बिना ठाकुरजी को पानी कौन पिलाएगा ? अब मैं आया हूँ, पानी पिला, तेरी भक्ति के कारण मुझे प्यास लगी और मैं प्यासा दौड़ आया तेरे पास। तू मुझे पानी पिला दे। वहीं पर सोने के सब कलश तैयार हो गये। भगवान् बोले – इसी में मुझको पानी पिला। सेवा मांगता है तो सेवा ले ! परमेष्ठीजी रोने लग गये, दौड़ करके कलश में जल भरा और बोले – प्रभु ! धन्य है, आपने कृपा किया, मैं सोच रहा था, प्रभु प्यासे होंगे।

प्रभु बोले – 'हाँ, मैं प्यासा हूँ, पिला पानी।' उन्होंने पानी पिया और बोले – 'अच्छा ! अब तुम चलो।'

परमेष्ठीजी बोले – 'कहाँ ?' प्रभु – 'घर में।' परमेष्ठीजी सोचने लग गये – कहीं बादशाह को खबर लग गई तो उसने कहा था कि तेरे प्रभु को भी फाँसी दे दूँगा, वो प्रेम से सोचने लग गये कि कहीं बादशाह हमारे प्रभु को कष्ट न देने लग जाये। उधर बादशाह अपने महल में सो रहा था तो सोते समय उसको प्रभु ने एक लात मारा। वह नींद में देख रहा है कि बड़ी भयंकर आकृति है, वह तो डर के मारे कांपने लगा सपने में और बोला – अरे ! मुझे बचाओ, बचाओ। प्रभु गरजे – अरे बचाओ कैसे, तुझको बचाने वाला इस दुनिया में पैदा नहीं हुआ है। सपने में बात कर रहे हैं प्रभु। बादशाह बोला – आप कौन हैं, मुझे बड़ा डर लगता है, मुझे छोड़ दो। प्रभु – छोड़ कैसे दूँ, मेरे भक्त को तूने जेल में डाल दिया है और तू कहता था कि प्रभु को बुला, मैं उसे फाँसी दूँगा, अब मैं आ गया हूँ, वही प्रभु हूँ, अब दे मुझे फाँसी, लगा फाँसी, ऐसा कहकर जोर से बादशाह की छाती पर एक लात मारा तो वह चिल्लाया और बोला – हुजूर ! बहुत गलती हुई, अभी छोड़ता हूँ परमेष्ठीजी को, अभी उनके चरण पकड़ता हूँ, एक बार मुझको अवसर दे दो, अभी मैं जेल जाऊंगा, प्रभु बोले – 'अभी जायेगा, अच्छा ठीक है, इस बार छोड़े देता हूँ, अगली बार तेरा गला घोंटकर नरक में फेंक दूँगा।' ऐसा कहकर प्रभु अंतर्धान हो गये। बादशाह की नींद खुली, वो जगा तो अनुभव हुआ कि पूरे शरीर में दर्द हो रहा है, जैसे किसी ने बहुत पीटा हो। तुरन्त बिस्तर से उठकर उसने सिपाहियों से कहा – जल्दी से मेरा घोड़ा लाओ, जल्दी से मेरी सवारी करो। सिपाहियों ने कहा – 'इतनी रात को कहाँ जायेंगे हुजूर।' 'अरे, पूछो नहीं बदमाशों, मैं जेल जाऊंगा'– बादशाह बोला। 'जेल जायेंगें हुजूर !' – आश्चर्य से सिपाही बोले। सिपाही सोच रहे हैं कि बादशाह का दिमाग खराब हो गया है क्या जो आधी रात को जेल जाएगा। अब बादशाह से कौन बोले, सब सवारी लाई गई, वह जेल पहुँचा। उधर परमेष्ठी जी ने देखा कि जेल का फाटक खुला और बादशाह दौड़ा आ रहा है और आकर वह उनके पैरों में गिर पड़ा और बोला – 'अरे भाई परमेष्ठी ! मुझे माफ कर दो, मुझे माफ करो, मेरी जान बचा लो।' परमेष्ठी – 'अरे क्या हुआ महाराज !' बादशाह – 'अरे वो तुम्हारा प्रभु आया था, उसने मेरी बड़ी पिटाई किया, मेरी तो नस–नस दुःख रही है। अब तुम जल्दी बैठो हाथी पर, ऐसा कहकर उसने अपने हाथी पर सोने का हौदा बँधवा करके और परमेष्ठीजी को उस पर बैठा करके पूरे नगर में घुमाया। बादशाह ने नगर वासियों से कहा – देखो भाई ! इनसे (परमेष्ठीजी से) कोई कुछ मत कहना, इनका प्रभु बड़ा शक्तिशाली है। हमको उसने ठीक कर दिया, ये अपने भगवान् के सच्चे भक्त हैं, इन्होंने मेरा तकिया अपने प्रभु को दे दिया था लेकिन मैं समझ नहीं पाया। इसके बाद बादशाह परमेष्ठीजी से बोला – सरकार ! एक और प्रार्थना है, ये मेरा दूसरा तकिया है, ये भी अपने प्रभु को अर्पण कर दें। तब परमेष्ठीजी बोले – अरे भाई, प्रभु तकिया के भूखे नहीं हैं वो तुम्हारा तकिया नहीं लेंगे। वो तो प्रेम की बात थी, उस समय हमको होश नहीं था कि हम जाग रहे हैं कि सो रहे हैं और प्रेम में हमने उन्हें तुम्हारा तकिया दे दिया और उन्होंने ले लिया। इसलिए हे भाइयो ! तुम सब सच्चे भक्त बन जाओ। इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि भगवान् भावग्राही हैं, सच्चे भाव अथवा प्रेम से हम उन्हें कोई भी वस्तु अर्पण करेंगे तो भगवान् उसे तुरन्त स्वीकार कर लेंगे। इसके अतिरिक्त जो भगवान् के सच्चे भक्तों का अपराध करता है तो वह चाहे दुनिया का बहुत बड़ा बादशाह ही क्यों न हो, भगवान् उसे कठोर दण्ड देते हैं और अपने भक्त की महिमा को संसार के सामने प्रकाशित करते हैं। ❍

Essence of Spiritual Practices

- Vyasacharya Shri Radha Priya Ji Maharaj

One hot summer day, when scorching heat had taken out most of salt from our body, we (Radha Kant Bhaiya Ji and I) landed-up on the top of Mangarh from one of our missionary works, protection of sacred hills of Braj, to take some guidance from Pujya Baba Maharaaj. Pujya Baba, in his as usual dress code, was wearing just a bluish 'safi', around his waist and was bestowing showers of his divine smile on materially seasoned entities like us. As we reached Him, He, out of His mercy, warmly welcomed us. His welcoming divine gesture took out all the burning sensations from us and delivered a complete comfort by drifting a cool breeze. Revered Baba Maharaaj was discussing something very serious with few devotees present over there and the discussion was very much relevant to a question which was boggling my mind since long. The subject was related to different spiritual practices and worshiping techniques. Pujya Baba Maharaaj quoted few verses from Shrimad Bhagwatam which made the concept of 'Sadhna' (Spiritual Practice) very clear. The assertions by Baba Maharaaj, as whatever little I remember, were like this

In very starting of Shrimad Bhagwatam, the definition of 'Param Dharam' (ultimate duty) has been explicitly mentioned. It says

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति।।

(S.B. 1.2.6)

The highest virtue for everyone is that by which devotional love towards The Lord Krishna can be developed or by which that Supreme Power, who is playing with His cowherd companions, can be pleased and also, that devotional service must be unconditional and uninterrupted.

It has been also clearly indicated in that very chapter that whatever religious or spiritual practice one performs if it is not developing the devotional attachment towards the almighty then that endeavor is of no use, it is just a depletion of time and effort.

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।।

(S.B. 1.2.8)

Not only this, in canto 10 chapter 14 when God Brahma has paid his obeisance to Lord Krishna by singing the outstanding prayer, he has put it very strongly that it doesn't make sense if someone gives up the path of selfless devotion towards the Lord, in the pursuance of theoretical knowledge. By doing this he will simply undergo a wearisome situation and will not get the true result, same as a person who beats an empty husk of wheat cannot get grain, one who simply practice devotion-less knowledge cannot achieve the actual destination. He only rushes in trouble.

श्रेय स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।।

(S.B. 10.14.4)

Pujya Baba Maharaaj, in the same context quoted very significant verses as proof to the whole idea of spiritual practices. Further, illustrating the importance of growth of devotion unto the Lord in regard with 'sadhna', he mentioned the verse said by Shri Narad Muni in chapter 5 of canto 1 wherein Narad Ji has discarded highest of knowledge and highest of selfless work (Nishkaam Karm) if it is devoid of devotion towards Lord Krishna

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनं।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे च चार्पित कर्म यदप्यकारणं।।

(S.B. 1.5.12)

And, in one another verse of the same chapter, Narad Muni has made it quite clear that whatever religious practice is being performed by a person, the only essence of that practice or service lies in glorification of Krishna's Name and His transcendental performances.

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरुपितो यदुत्तमश्लोक गुणानुवर्णनं।।

(S.B. 1.5.22)

In fact, while starting his discourse on Shrimad Bhagwatam in Chapter 4 of canto 2 Shri Shukdev Muni during his invocation, He has declared that none of any performer of highest of religious or spiritual practices, will get the desired result if his 'sadhana' (spiritual practice) is devoid of devotion or is not being surrendered unto lotus feet of Lord Krishna.

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः।।

(S.B. 2.4.17)

Further Pujya Baba Maharaaj gave some other crucial examples and cited verses from various scriptures in this regard. My doubt that, why even topmost of religious practices performed by acclaimed 'sadhak' (spiritual seeker) gathers no results, got absolutely cleared. The basic gauge to measure the same is that whether those practices are developing the true devotion towards The Lord and His devotees or not in oneself.

And it is quite evident also; I still remember words of Swami Vivekanand in one of his lecture where he has put the selfless divine love towards the Lord at the topmost strata. He once said,

"When this highest ideal of love is reached, philosophy is thrown away, who will then care for it? Freedom, Salvation, Niravana- all are thrown away; who cares to become free while in the enjoyment of divine love?" - Swami Vivekanand, (P.g. no. 111, Bhakti Yoga)

But usually, we people do undermine the importance of the simplest of the way, as once a learned saint said that

"The most strenuous of all endeavors in the world is that which needs the least effort - to be quiet" - Swami Chinmayananda, Chinmay mission.

Similarly, due to our ignorance and previous sins, we could not gather the required faith; the faith which is prerequisite to move up in the spiritual path. In 'Brahm Vaivart Puran' it's mentioned that until our mind is full of material filth, belief in scriptures and in sermons of our Guru cannot be developed. Only by virtue of good deeds of past several births such an inclination towards the divine teacher and scriptures is developed.

यावत्पापैस्तु मलिनं हृदयं तावदेव हि।
न शास्त्रे सत्यबुद्धिः स्यात् सद्धुद्धिः सद्गुरौ तथा।
अनेकजन्मजनित पुण्यराशिफलं महत्।
सत्संग शास्त्र श्रवणादेव प्रेमादि जायते।।

And, once it is developed then the journey to toughest gets simplest of simple. What you have to do is just start imbibing various transcendental Leelas of the Lord as narrated by the divine guru, someone highly mystical like Pujya Baba Maharaaj. It is mentioned innumerably in Shrimad Bhagwatam that just by listening and reciting the past-times of Lord Krishna, one easily gets free from endless bondage of suffering and distress.

Shri Ved Vyas Ji has strongly asserted in Bhagwat Puran that by simply listening to the various philosophies and transcendental recitals of the Lord compiled in Shrimad Bhagwatam, the divine love towards Lord Krishna originates in oneself and which at once leads to eradication of sorrow, illusion and fearfulness.

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा।।

(S.B. 1.7.7)

Kunti Ji says in her prayer in chapter 8 of cantol that O' Krishna, those who consistently hear, chant, absorb and remember Your transcendental activities and take pleasure in others' performing so, undoubtedly see Your lotus feet, which alone can relieve one from the repetition of birth and death.

श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्।।

(S.B. 1.8.36)

Also, in one of the important declaration made by Shri Ved Vyas Ji in Shrimad Bhagwatam, he has emphasized that one would surely get out of the illusionary Maya of the Lord if he regularly, out of reverence towards teachings of the Supreme Lord, describes, appreciates and hears transcendental recitals of Lord Krishna.

मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः।
श्रण्वतः श्रद्धया नित्यं माययाऽऽत्मा न मुह्यति।।

S.B. 2.7.53

Such a simplest way to the ultimate divine abode it is… Isn't it? And why does it happen? It happens because The Lord himself manifests in the heart of the devotee and cleanses all material impurities setting him completely free from hardened material bondages.

श्रृण्वतः श्रद्दया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि।।

(S.B. 2.8.4)

So, we shall always remember that even most pious work, if its devoid of Lord Krishna's devotion, it is a sheer wastage of precious time to perform it, as it has also been mentioned in Shri Ram Charit Manas by Goswami Tulsi Das Ji that:

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ।।

(RCMèA.K.290.1)

And after all the fact is

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।

❍

प्रेमसिन्धु गोपी–विरह

श्री बाबा महाराज द्वारा "गोपी गीत" प्रवचन से संकलित

ब्रजगोपीजनों ने वियोगावेश में कृष्ण को कपटी 'कितव' कहा। अपने स्वभाव को जो बदल के दिखावे, वो कपटी है। 'कपटी' महान दुष्ट भी हो सकता है, 'कपटी' महान संत, परमेश्वर भी हो सकता है। 'अपने स्वभाव को बदलके दिखाना' ये महात्मा भी करते हैं, भगवान् भी करते हैं और महान दुष्ट भी करते हैं। महान दुष्ट तो 'कपट' गलत काम (हिंसा, चोरी, दुराचार, ठग–विद्यायी आदि) के लिए करते हैं। जैसे रावण ने सीता–हरण के लिए साधु का वेष बनाया और कालनेमि ने हनुमानजी को ठगने के लिए साधु–वेष धारण किया था। ये गन्दा कपट है। गंदे कपट का लक्ष्य गन्दा होता है। महात्माजन और भगवान् कल्याण के लिए कपट करते हैं। संतजन अपने को दीन–हीन, महान पापी बताते हैं, जबकि वे ऐसे पवित्र होते हैं कि गंगा को भी पवित्र कर दें लेकिन अपने स्वरूप से अलग दिखा रहे हैं लोगों को, ये बहुत ऊँची बात है, ऐसा कपट यदि किसी में आ जाए तो कल्याण हो जाय। संसार में 'कपट' का अर्थ गन्दा लगाया जाता है लेकिन 'भगवान् का कपट' प्रेम बढ़ाने के लिए होता है, ऐसा कपट करते हैं कि जिससे भक्त का कल्याण हो। भगवान् ने स्वयं गोपीजनों से कहा है कि हे गोपियो ! तुम हमारे में दोष मत देखो, हमारा कपट तुम्हारे प्रेम–धन को बढ़ाने के लिए हुआ है।भक्त–संत और भगवान् का कपट प्रशंसनीय है।

काले भौंरे (भ्रमर) को देख करके विरह–निमग्न गोपियाँ कृष्ण की कपट लीला को स्मरणकर कहती हैं –

दिवि भुवि च रसायां काःस्त्रियस्तद्दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः।।

(भा.१०.४७.१५)

अरे भौंरे ! इस पृथ्वी, स्वर्ग या अन्य लोकों में ऐसी कौन–सी स्त्री, देवी या सती है जो कृष्ण की कपटभरी मनोहारी मधुर मुस्कान, भौहों के इशारे–चितवन आदि से आकर्षित होकर वश में न हो जाय ? सतियों की सती पार्वतीजी भी रास में आईं, लक्ष्मीजी भी तपस्या कर रही हैं नारायण स्वरुप को छोड़कर के श्रीकृष्ण– स्वरुप पाने के लिए। सरस्वती आदि से बढ़कर सती और कौन हो सकती है ? जो श्रीकृष्ण के लिए स्वयं तरस रही हैं, क्योंकि **'कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः।'** श्यामसुन्दर कपट से ऐसा मुस्कुराते हैं, "रुचिरहास" ऐसी मीठी मुस्कान हँसते हैं और कपट से अपनी भौंह को ऐसा मरोड़ते, नचाते हैं कि आँखों की मरोड़ और भौंहों की चलन ये सब देख करके ऐसी कौन है जो श्रीकृष्ण रूप पर अपना सब कुछ न्यौछावर नहीं कर देगी ?

यहाँ पर 'कपट' इसलिए कहा कि हमको (ब्रजगोपियों को) भी इस तरह से भौहों की मरोड़, मीठी मुस्कान, नेत्रों की चलन–चितवन से घायल करके चले गए, इसलिए कपटी हैं।

उनके कपट का फल मीठा है, उस विरह में ऐसा विरह नहीं है जैसे संसार में हमलोग विरह में रोते हैं। वहाँ नित्य भगवान् की प्राप्ति रहती है, उसको विषामृत कहा गया, ऊपर से जहर है, अन्दर से अमृत है। कभी भी भगवान् अपने इस ब्रज से अलग नहीं होते हैं। ये विरह भी एक आनंद है, प्रेमी चाहता है कि अपने प्रेमी की याद करे, बस उसकी याद में जो आनंद आता है वो संसार की किसी वस्तु में नहीं आता। प्रेमी भक्त की पहिचान है –

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ–
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा–
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः।।

(भा.११.२.५३)

तीनों लोक की लक्ष्मी, सुख–सम्पत्ति, भोग–सामग्री लाकर के रख दो उसके सामने लेकिन वो उसकी स्मृति (याद) भी नहीं करता है कि सामने लड्डू का थाल है, कि पेड़ा का थाल है, कि कलाकंद का थाल है, कि अमृत का मटका (कलश) है, कि कौन–सी अप्सरा खड़ी है सामने, उसकी स्मृति में कभी भी ये सब बातें नहीं आती हैं। यानि आँखों से तो देखता है भक्त, ऐसा नहीं कि भक्त अन्धा हो जाता है (ऐसा नहीं समझना चाहिए कि सभी भक्त सूरदास हो गए)।

केवल देखने–देखने में फर्क होता है। एक बच्चा अपनी माँ की गोद में नंगा पड़ा रहता है और माँ भी अपना स्तन (दूध) पिलाती है, सब वस्त्र खोल करके नहाती भी है। लेकिन बच्चे की नजर में भोग–दृष्टि नहीं है। तो उसी तरह से भक्त भी देखता है (ऐसा नहीं कि आँख फोड़ लेता है) – वह लड्डू भी देखता है, कचौड़ी भी देखता है, बर्फी भी देखता है किन्तु मन में खाने की इच्छा पैदा नहीं होती है। अच्छी रूपवती स्त्री को भी देखता है भक्त, लेकिन उसके देखने से स्मृति (दिमाग) में भोग–दृष्टि नहीं आती कि ये स्त्री भोग्या (भोग के लिए बनाई गई) है, इतनी पवित्र दृष्टि होती है ऐसे भक्त की – आँखों में से 'श्वेत किरणें' निकलती रहती हैं। आँखें बता देती हैं कि किन आँखों में गंदगी (काम आदि विकार) है और किन आँखों में नहीं है। अप्सराओं को भी देखा भक्तों ने लेकिन उन अप्सराओं को देख करके उनमें भोग बुद्धि नहीं आई, 'ऐसा निर्मल मन हो जाता है सुन्दर, स्वच्छ शीशे की तरह, तब परमात्मा दिखाई पड़ता है।

स्वयं भगवान् ने कहा है –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

(गीता ६.३५)

मन चंचल है, इसको रोकना बड़ा कठिन है लेकिन अभ्यास और वैराग्य के द्वारा तू मन को रोक लेगा, जीत लेगा। अगर ये दो चीजें (अभ्यास, वैराग्य) नहीं हैं तो कुछ नहीं होगा भले ही पढ़ लिख गये, चाहे बाबाजी बन गये। इसलिए हर समय अभ्यास व सुदृढ़ वैराग्य की आवश्यकता है, निरन्तर अभ्यास–वैराग्यवृत्ति से लक्ष्य साधुता (भक्त बनने) का होना चाहिए, इससे मन को जीत लोगे। भोग–बुद्धि से किसी चीज को भक्त नहीं देखता है, खूब आँख खोलकर देखो लेकिन भाव तुम्हारा सुन्दर (शुद्ध) होना चाहिए कि सब राधारानी हैं, सब श्रीकृष्ण हैं। बच्चों की तरह निष्कपट, सरल–सहज भाव हो, हृदय में भोग–बुद्धि नहीं आनी चाहिए।

श्रीकृष्ण कपट करते हैं अपने भक्त के कल्याण के लिए, इसीलिए उनको 'कपटी' कहा गोपियों ने।

'कपटी' आदि ऐसे शब्द गोपीजनों ने क्यों कहे ? क्योंकि संसार का बन्धन जो कभी छूटता नहीं है वो श्रीकृष्ण ने छुड़ा दिया। एक पद में गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि हे श्यामसुन्दर ! हम तुम्हारे पीछे माता–पिता, घर–परिवार आदि सब कुछ छोड़कर के आयीं हैं यानि समस्त आसक्तियों को छुड़ा दिया और फिर कहते हो कि चले जाओ।

ब्रजगोपियाँ श्यामसुन्दर से अपनी विरह–व्यथा कहती हैं –

मात–पिता अति त्रास दिखावत।

(ये गोपी–प्रेम है। बहुत कष्ट हुआ था गोपियों को। जान–बूझकर के ऐसी प्रेम–परीक्षा होती है। भगवान् से प्रेम करने चलोगे तो घर, द्वार सब छूटता है।)

गोपीजन कहती हैं कि कन्हैया ! घर जावैं, तो मैया मूसर लेकै दौड़ेगी। वंशी बजने पर रात में भाग जाती थीं तो लौटने पर क्या होता था – पिता अलग डंडा लेकै बैठा है।

भ्राता मारन मोहि धिरावै, देखे मोहि न भावत।।

घर में जाते ही भाई मारने दौड़ता है और मेरी ओर देखना भी अच्छा नहीं समझता है, मेरी ओर देखता भी नहीं है कि हमारी बहिन रात में कहाँ चली गई थी ? सारे ब्रज में बदनामी होती है, कितना कष्ट था ?

जननी कहत बड़े की बेटी, तोकूँ लाज न आवत।

जैसे ही घर में जाती हूँ तो माँ कहती है कि बेसरम, आ गई यहाँ, इतने बड़े घर की लड़की तोकूँ लज्जा नहीं आती है। भाई अर्राय (कड़े शब्द कहकर) के गयो, माँ गयी, उधर से बाप आयकै बोल्यो – 'ये ऐसी हमारे खानदान में कैसे पैदा हो गई, ये मर जाती तो अच्छौ होतो।'

पिता कहै कैसी कुल उपजी,
मन ही मन रिस पावत।।

और बड़ी बहन तो देखते ही गाली देती है बुरी–बुरी।

बहिनी देख देत मोहि गाली,
काहे कुलहि लजावत।।

सूरदासजी बोले – 'इस प्रकार श्यामसुन्दर से कहकर के रोने लग गईं गोपीजन।'

सूरदास प्रभु सों यह काहे, अपनी बिपति जनावत।।

देखो, जैसे संसार में प्रेम होता है, इससे करोड़ों गुना ऊँचा **'भगवान् का प्रेम'** होता है।

क्रमशः....

श्रीजी की वसनाञ्चल–लीला

श्रीबाबामहाराज द्वारा श्रीराधासुधानिधि–व्याख्या से संग्रहीत

ग्रैवेयोज्ज्वलकम्बुकण्ठिमृदुदोर्वल्लीचलत्कङ्कणे।
वीक्षे पट्टदुकूलवासिनि रणन्मञ्जीरपादाम्बुजे।।

(श्रीराधासुधानिधि – १०८)

लाड़िलीजी का ऐसा सुन्दर दुकूल (अंचल) है, जिसकी श्रीसुगंध पाने के लिए श्यामसुन्दर लालायित रहते हैं। जिधर से श्रीजी निकलती हैं, पादाम्बुज–मणि–मंजीर के छम–छम की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। साँकरीखोर में लाड़िलीजी के अंचल की सुगन्ध को लेने के लिए नंदलाल खड़े हैं लकुट लेकर के और अंचल नहीं छोड़ रहे हैं। गौरांगी राधारानी की वक्षःस्थल का स्पर्श करके जो अंचल आ रही है, वह बड़ी ही प्यारी लग रही है। श्यामसुन्दर ने उस अंचल की सुगंध लेकर चूमने के लिए अपने मुख में लगाया तो श्रीलाड़िलीजी कहती हैं कि अरे ! तुमने क्या अनर्थ किया, तुम पीक लगाते हो मेरे अंचल में। अरे ! कुछ संकोच–शर्म तो सीखो कि ग्वारिया ही बने रहोगे।

नैक दूर ठाढ़े रहो, कछु औरे सकुचाय।
कहा कियौ मन भाव ते, मेरे अंचल पीक लगाय।।
मोहन जान दै .....। नागरि दान दै .....।।

अंचल नहीं छोड़ा कृष्ण ने, उस अंचल में किशोरीजी का दिव्य सौगंध्य, सौरस्य सब कुछ प्राप्त हो रहा है। नंदलाल कहते हैं कि हे लाड़िलीजी ! हमसे इस अंचल में पीक लग गई, चूमा अवश्यय यदि आप इसका बदला लेना चाहती हैं तो हमारे नेत्रों पर, हमारे मुख पर अपनी पीक दे दो, यहाँ लगा दो, बदला चुक जाएगा आपका और आप शान्त हो जाओगी। जो हमसे भूल भई है, उसका तो दण्ड यही हो सकता है। आपके अंचल पकड़ने का दण्ड हमें यही मिलना चाहिए।

राधे कहा भयौ अंचल लगी, पीक हमारी जाय।
याकै बदले लाड़िली, मेरे नैनन पीक लगाय।।
नागरि दान दै .....।। मोहन जान दै .....।

श्रीराधारानी के बहुत से नाम हैं, तो एक नाम जो बड़ा प्रसिद्ध है जिसे रसिकों ने लिखा है –

'गन्धोन्मादितमाधवः' – इसका मतलब हुआ **'गन्धोन्मादित'** जो अपनी श्रीअंग की सुगंध से 'माधव' श्रीकृष्ण को उन्माद में भर देती हैं। जो श्रीकृष्ण उनकी दिव्य सुगन्धि को पाकर के ये भूल जाते हैं कि मैं कौन हूँ, मैं कहाँ हूँ, ('उन्माद' माने जो सब कुछ भूल जाय कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, अपनेपन को भूल जाय।)

श्रीजी के श्रीअंग की सुगन्ध को पाकर के ही श्रीकृष्ण अपने कृष्णपने को भूल जाते हैं, उन्मत्त हो जाते हैं। इसलिए श्रीजी के अंचल की हवा पाकर के धन्य हुए रसराज श्रीकृष्ण।

बिल्वमंगलजी ने ये लीला देखी है, जो देखा है वो उन्होंने लिखा है –

जब श्रीकृष्ण श्रीलाड़िलीजी के अंचल को पकड़ रहे थे और वो मना कर रहीं थीं –

"मुञ्चांचलं चञ्चल पश्य लोकं बालोऽसि न लोकयसे कलङ्कम् ।
भावं न जानासि विलासनीनां गोपाल गोपालन पण्डितोऽसि ।।"

बड़ा मीठा व्यंग्य किया श्रीजी ने। (श्रीकृष्ण का एक नाम है 'चंचल'। चंचल क्यों है ? 'चल' धातु चलने में और इससे अतिशय जो चलता हो, 'यङ्ग' प्रत्यय करके चञ्चल बनता है अर्थात् जो कभी स्थिर न रहता हो। 'जो बड़ा चंचल होता है, जिसकी हर क्रिया बड़ी चंचल होती है।' ये ललित नायक का गुण होता है। 'नायक का चंचल होना और नायिका का स्थिर होना (गुणवती नायिकाओं का लक्षण है)' ये रस की मर्यादा है, रस की शोभा है।

श्रीजी कहती हैं – **'मुञ्चांचलं चञ्चल' 'चञ्चल मुञ्च'** हमारे इस अंचल को छोड़ो।

गोपालजी बोले – क्यों छोड़ें ?

श्रीजी ने कहा "दृश्यपश्य लोकम्" तुम अपवाद या लोकों के कलंक की बात नहीं सोचते हो और यहाँ तो इस संसार में छोटी–सी बात कलंक बनती है।

लेकिन श्यामसुन्दर अंचल नहीं छोड़ रहे हैं तो श्रीजी कहती हैं कि **'बालोऽसि न लोकयसे कलङ्कम्।'**

('बाल' माने बच्चा नहीं होता है। कृष्णकर्णामृतम् में बिल्वमंगलजी ने 'नीलं बालम्' शब्द प्रयोग किया है कई बार और वो प्रयोग किया है 'किशोर' अर्थ में। छोटे बालक के लिए जब कहना पड़ता है तो वो 'क' प्रत्यय लगा देते हैं – 'बालक'। छोटी लड़की होगी तो 'बालिका' कहेंगे, कुछ बड़ी होगी तो 'बाला' कहेंगे। तो इसलिए उन्होंने 'बालक' शब्द

प्रयोग नहीं किया, 'बालम्' कहा है, 'बालम्' से तात्पर्य होता है – नवकिशोर।)

तो **'बालोऽसि'** माने अल्हड़ प्रेमी हो तुम। नव किशोर जिनकी शोभा है। **'बालोऽसि न लोकयसे'** नव किशोर हो अभी, तुम्हारी प्रौढ़ बुद्धि नहीं हुई है। **'नवकिशोर'** सबसे सुन्दर अवस्था मानी गई है श्रृंगार रस में (वैसे तो 'किशोर' हैं ही लेकिन 'नवकिशोर' उससे भी अधिक सुन्दर मानी गई है, १२ से १४ वर्ष तक की अवस्था 'नवकिशोर' होती है।

कुम्भनदासजी ने श्रीकृष्ण के नवकिशोरवपु के लक्षणों को लिखा है –

कितेक दिन ह्वै जु गये बिनु देखे।
तरुण किशोर रसिक नंदनन्दन,
कछुक उठति मुख रेखें।।
वह चितवनि वह हास मनोहर,
वह नटवर वपु भेखें।
वह शोभा वह कान्ति वदन की,
कोटिक चंद विशेषें।।

नव किशोर रसिकशेखर नंदलाल का माधुर्यमय नील–वपु, सौन्दर्य–सीमा मुख–कमल जिस पर कुछ–कुछ रेख आना प्रारम्भ हुआ हो। वह सुन्दर श्रीकृष्ण की चितवन, वह मनोहारी मुस्कराहट, करोड़ों–करोड़ों चंद्रमाओं से भी अधिक सुंदरता, वह सुन्दर नटवर वपु जो तीन जगह से टेढ़े होकर खड़े होते हैं, ('बंकु'– टेढ़ा) बड़ी सुन्दर बांकी अदा है, इसीलिये कोई–कोई उनको बाँकेबिहारी कहते हैं।

अतः श्यामसुन्दर के लिए 'बाल' शब्द का प्रयोग किया, बालक नहीं। 'बाल' माने नवकिशोर हो, अल्हड़ प्रेमी हो। बिल्वमंगलजी कहते हैं कि लाड़िलीजी ने एक मीठी–सी डाँट लगाई – **'बालोऽसि'** तुम बड़े नासमझ हो, 'नालो कैसे कलङ्कं' कलंक नहीं देखते और हमारे अंचल को आकरके पकड़ लेते हो। उसका कारण ये है कि **'भावं न जानासि विलासनीनाम्'** अरे कन्हैया ! तुम विलासिनियों के भाव को नहीं जानते हो, जो प्रेमवती नायिकायें होती हैं उनका तुम्हें ज्ञान ही नहीं है।

जो प्रेम करने वाली होती हैं उनका प्रेम बड़ा गंभीर होता है और 'गोपी' शब्द का अर्थ ही यही होता है **'गुपु रक्षणे'** जो अपने प्रेम को छिपाकर रखती हैं।

जो प्रेम जितना छिपाया जाता है वो प्रेम उतना ही गंभीर (अथाह) होता है, उसकी क्रियाएँ भी बड़ी गंभीर होती हैं। प्रेम को एक समुद्र की संज्ञा दी गई, समुद्र में जल्दी हलचल नहीं होती हैय छोटे–छोटे सरोवरों में हलचल होती है। राधिकारानी के बारे में तो कहा गया –

प्रेमाम्भोधिरसोल्लसत्तरुणिमारम्भेण गम्भीर दृग –
भेदाभङ्गिमृदुस्मितामृतनवज्योत्स्नांचित श्रीमुखी।

(श्रीराधासुधानिधि – २४३)

श्रीराधिकारानी एक प्रेम का समुद्र हैं और प्रेम–समुद्र के रस का उल्लास हुआ (वो प्रेम का समुद्र उमड़ा)। 'उल्लास' माने जब उसमें ऊपर की ओर तरंगें आयीं। प्रेम का उल्लास बालकपन में नहीं होता है। श्रृंगार रस में प्रेम का उल्लास तरुणिमा (जवानी, यौवन) में होता है। नवयौवन में प्रेम ऐसा लगता है मानो उमड़ रहा हैय चलने में, फिरने में, बैठने में, उठने में प्रेम उमड़ता रहता है।

श्रीराधिकारानी तो गंभीर समुद्र हैं, समुद्र में बहुत कम हलचल होती है। 'तरुणिमा' यौवन का आरम्भ है। नवयौवन है परन्तु फिर भी श्रीराधिकारानी बहुत गंभीर हैं, नवयौवन में भी **'गम्भीर दृग'** नेत्र बड़े गंभीर हैं। परन्तु प्रेम का समुद्र उमड़ा है तो कुछ न कुछ तो करेगा – 'नेत्रों में कुछ प्रेम के भाव प्रगट हो गये।'

नेत्र (आँख) हमारे हर भाव को बता देते हैं। आँखों से सभी रसों को, सभी क्रियाओं को जाना जाता है। आँखें बता देती हैं कि हृदय में कौन–सा भाव है।

भय विषाद आलस अमल सुख दुःख हेत अहेत।
मन महीप के आचरन दृग दीवान कहि देत।।

जैसे राजा की आज्ञा को मंत्री सुनाता हैय वैसे ही मन राजा है, इसके (राजा मन के) हर भाव को, हर आदेश को आँखें कह देती है। भय है तो आँखें बता देती हैं– डरी हुई आँखें कुछ अलग होती हैं। विषाद (दुःख) है तो आँखें बता देती हैं – दुःख की आँखें कुछ अलग होती हैं। आलस है तो भी अलसाई आँखें बता देती हैं कि चित्त में आलस है। अमल (किसी भी प्रकार का नशा) है तो भी आँखें बता देती हैं, सुख–दुःख, हित–अनहित को भी आँखें बता देती हैं। श्रीराधिकारानी में भी जब प्रेम का समुद्र उमड़ा तो प्रभाव नेत्रों पर गया, अत्यधिक गंभीर थीं किशोरीजी 'प्रेमसिन्धु गौरांगी' और बड़ी–बड़ी महाभाव की तरंगें उठा करती हैं जिनके भीतर। लेखकों, रसिकों, विद्वानों ने अनेकों शाखाएँ लिखी हैं, यहाँ तक लिखा है कि कुछ भाव ऐसे होते हैं जो केवल किशोरीजी में होते हैं, श्यामसुन्दर में नहीं होते हैं। **'मादनाख्य**

महाभाव' ये केवल राधारानी में ही होता है, श्रीकृष्ण में नहीं होता है। **'भेदाभङ्ग'** आँखों में प्रभाव आया प्रेम का और उसका परिणाम ये हुआ कि 'मृदुस्मितामृत' मीठी–सी मुस्कान आई। वो मुस्कान क्या थी ? उसके भीतर एक अमृत की वर्षा थी उस मीठी–सी मुस्कान में और अमृत के साथ–साथ एक बहुत सुन्दर शुभ्र (श्वेत) प्रकाश फैल रहा था, कुंद कली के समान सुन्दर–सुन्दर दन्त पंक्तियाँ। जब श्रीराधिकारानी मुस्करातीं हैं तो लाल–लाल ओंठ खुलते हैं और उनसे कुंद–पुष्पों की तरह ऐसा लगता है मानो (भावं न जानासि विलासनीनां गोपाल गोपालन पण्डितोऽसि।) ये पंक्ति बता रही है कि जो ग्वारिया होता है वो गँवार होता है। ये एक व्यंग्य वचन है, परिहास है कृष्ण के लिए। (नहीं तो 'श्रीकृष्ण तो रसिकशेखर हैं'।) परन्तु 'रस की बातों में व्यंग्य, हास–परिहास' इसी को प्रेम कहते हैं। 'प्रेम पत्तन' एक ग्रन्थ है, उसमें दिखाया गया है कि प्रेम में सभी क्रियाएँ उल्टी हुआ करती हैं।

श्रीजी कहती हैं – "तुम गोपाल हो। अरे ! तुमने गायें चराई हैं नय तो गाय चराने के तुम पंडित हो, श्रृंगार रस के पंडित नहीं हो सकते हो, तुम प्रेम करना क्या जानो। प्रेम–शास्त्र अलग है गोपाल और गायों को घेरना, गायों को चराना अलग शास्त्र है। इसीलिये तुम हमारे अंचल को छोड़ो और प्रेम–शास्त्र का अध्ययन करो हम लोगों से, प्रेम करना सीखो। तुम तो गँवारपन की बातें करने लग गये।"

यही 'अंचल का प्रसंग' एक रसिक ने लिखा है (दान–लीला में) –

छाँड़ दै ऽ ऽ ऽ रे ऽ ऽ ऽ अंचल चंचल छैला।
इतौ करत नंदराई लला क्यों, रोकै मही की गैला।।

श्रीजी – "तुमने रास्ता रोक लिया है, आगे जा नहीं सकती हैं, अंचल पकड़ लिया है, अंचल छोड़ो, रास्ता छोड़ो श्याम !"

जान न देत दान माँगत हठि,
ठाढ़ो है आड़ो अड़ैला।

बड़ी ही सुन्दर मुद्रा है, टेढ़े (आड़े) होकर के श्यामसुन्दर खड़े हैं कि साँकरी गली में इधर से या उधर से कोई निकल न जाय।

दान दै ऽ ऽ ऽ ऐ ऽ रे ऽ ऽ ऽ
दान दै ऽ ऽ ऽ ऐ ऽ रे ऽ ऽ ऽ
सीखे कहा अनोखे नागर, ये जौवन के फैला।।
छाँड़ दै ऽ ऽ ऽ रे ऽ ऽ ऽ अंचल चंचल छैला।

साँकरी गली में श्रीजी के अंचल को पाकर के धन्य हुए हैं श्रीश्यामसुन्दर।

'यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ' ये दधिदान का खेल प्रसिद्ध है और उसमें इस तरह से अंचल की प्राप्ति लालजी को होती है और उस अंचल के द्वारा ही उनको सुगंध की प्राप्ति होती है।

ये **'वसनाञ्चलखेलनोत्थ'** का प्रसंग बरसाने का है और प्रसिद्ध दान–लीला का है। ये लीला रसिक महापुरुषों ने देखी है, अनुभव किया है।

(ये लीलायें दिव्य, चिन्मय, गुणातीत, अप्राकृतिक हैंय जो श्रीजी की कृपा से गुणातीत (सांसारिक–भावों, मायिक–विकारों से रहित) होने पर ही समझ में आती हैं।)

क्रमशः...

कन्हैया रंग तोपै डारैगो सखि घूँघट काहे खोलै।।

पहली पिचकारी तेरे माथे मारै बिंदिया की सुरंग बिगारैगो, सखि घूँघट....।
दूजी पिचकारी तेरे अँखियन मारै काजर की रेख बिगारैगो, सखि घूँघट....।
तीजी पिचकारी तेरे मुख पै मारै नथली की गूँज बिगारैगो, सखि घूँघट....।
चौथी पिचकारी तेरी छतियन मारै चोली की चटक बिगारैगो, सखि घूँघट....।
पाँची पिचकारी तेरे घुटुवन मारै लहँगा की धूम बिगारैगो, सखि घूँघट....।
छटी पिचकारी तेरे पांयन मारै बिछुवन की घोर बिगारैगो, सखि घूँघट....।
साती पिचकारी तेरे सबरेई मारै जोबन को फूल बिगारैगो, सखि घूँघट....।

धामावतार से ही हुआ सर्वसमृद्धिमान् ब्रज

श्री बाबा महाराज के श्रीमद्राधासुधानिधि उपदेशामृत से संग्रहीत

धाम के तीन स्वरूप हैं –

(१) नित्य धाम (गोलोक, नित्य वृन्दावन, नित्य लीला भूमि)।

(२) अवतरित धाम (अधिदैव रूप)

(३) परिदृश्यमाण धाम (भौतिक रूप)

'जो हमको पृथ्वी पर धाम का भौतिक रूप (संसारी बाह्य रूप) दिखाई पड़ रहा है, इसमें हमको कोई भी चिन्मयता (दिव्यता) का अनुभव नहीं हो रहा है।' ये धाम का तीसरा रूप है, जिसे 'परिदृश्यमाण धाम' कहते हैं। 'नित्य धाम' जहाँ भगवान् नित्य विराजमान हैं, वहाँ से धाम अवतार लेता है। जैसे भगवान् अवतार लेते हैं वैसे धाम भी अवतार लेता है। जब भगवान् अवतार लेते हैं तब उनके साथ–साथ धाम का भी अवतार होता है और यहीं भारतभूमि में होता है, जहाँ सनातन समय से होता आया है, एक लिंक है, परम्परा है जो चली आ रही (ऐसा नहीं कि आज यहाँ हो गया, कल अमेरिका में धाम का अवतार हो गया, परसों रूस में हो गया, ऐसा नहीं है।) इसीलिए भारतवर्ष में जन्म लेने के लिए देवता भी तरसते हैं, देववन्दनीय है यह भूमि।

धाम का अवतार

ब्रह्मवैवर्त, गर्गसंहिता आदि पुराणों में अवतार–कथा वर्णित है – नित्य धाम में विराजमान युगल सरकार श्रीराधामाधव के पास जाकर के ब्रह्मा, शिव प्रार्थना करते हैं कि आप अवतार लें तो श्यामसुन्दर श्रीजी की ओर देखते हैं कि ये भी चलें क्योंकि इनके बिना रस का प्रवाह नहीं हो सकता है।

जीवगोस्वामीजी ने लिखा है –

"परिकर आविर्भाव वैशिष्टेन रसाविर्भाव वैशिष्ट्यं भवति।"

जैसी लीला होती है वैसा परिकर पहले प्रगट होता है। परिकर के वैशिष्ट्य (विशिष्ट गुणों) से ही रस के आविर्भाव का वैशिष्ट्य होता है। (जैसे – कोई राजा राजसभा में संगीत–गोष्ठी का कार्यक्रम करवाता है तो उसमें नृत्य–गान वाले लोगों से ही रसानन्द की अनुभूति होती है। इसलिए परिकरों की विशिष्टता (भगवान् के प्रेमीजनों की कला वैचित्री) से ही रस का प्राकट्य होता है। इसलिए जब रसरूप ब्रह्म के अवतार का कार्यक्रम बना तो रस की स्वामिनी राधारानी की ओर देखा श्रीकृष्ण ने।

तो श्रीराधारानी ने कहा –

यत्र वृन्दावनं नास्ति, यत्र नो यमुना नदी।
यत्र गोवर्धनो नास्ति, तत्र मे न मनः सुखम्।।

(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड – ३–३२)

"मैं तो वहीं जाती हूँ जहाँ हमारी ब्रजभूमि होती है, जहाँ श्रीमद्वृन्दावन नहीं है, श्रीयमुनाजी नहीं हैं, श्रीगिरिराजजी नहीं हैं, वहाँ मेरे मन को सुख की प्रतीति नहीं होती है।"

तो श्यामसुन्दर समझ गए और उन्होंने उसी समय धाम के अवतार का संकल्प लेकर कहा कि धाम भी आपके साथ चलेगा। इसलिए धाम का अवतार हुआ।

(धाम के अवतार का मतलब ऐसा नहीं कि कोई स्काईलैब है या कोई जड़ चीज है या कोई ग्रह, पुच्छल तारा, धूम्रकेतु आदि है जो आकस्मिक 'अचानक' प्रगट हो रहा है, ऐसी कोई चीज नहीं है।)

धाम एक विभु वस्तु है, चिन्मय है। 'चिन्मय' माने कि जड़ माया की संरचना वहाँ पर नहीं है। मायिक राज्य की जड़ वस्तुयें तो वहाँ प्रवेश ही नहीं कर सकती हैं। वहाँ हर वस्तु चिन्मय है – वृक्ष, लतायें आदि सब चेतन की तरह श्रीठाकुरजी की सेवा करते हैं, उनमें चैतन्य है, ज्ञान है, बोध है, रसावगाहिता है, रसरूपता है, रस का आस्वाद करते हैं, जड़ नहीं हैं। 'चिन्मय' है धाम और विभु भी है।

'विभु' माने सर्वव्यापक। अब कोई आदमी सोचे कि सर्वव्यापक कैसे है ? तो 'जैसे किसी एक हॉल में दूसरा हॉल घुसाना चाहें तो कैसे संभव है ? चाहे टूटेगा या इसको हटाके होगा।' ये सब दुर्घटनायें जड़ संसार में होती हैं। जो विभु वस्तु है वो आकाश से भी लाखों, अनन्त गुना सूक्ष्म वस्तु होती है, वो सर्वव्यापक होती है, उसको विभु कहा गया। 'जैसे भगवान् सर्वव्यापक हैं अपनी अचिन्त्य शक्ति से और सबमें सर्वव्यापक होते हुए भी सबसे अलग भी हैं।' यही ईश्वर की ईश्वरता है।

श्रुतियों ने कहा –

"असङ्गो हि अयं पुरुषः"

वो सर्वत्र रहते हुए भी असंग है।

इसलिए यहाँ ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि इस हॉल में दूसरा हॉल घुसायेंगे तो क्या टूटेगा ? ये सब बातें नहीं हैं। विभु वस्तु में सर्वव्यापी भगवान् के सभी गुण होते हैं। जो भगवान् में गुण हैं, वही धाम में गुण होते हैं।

श्रीमद्भागवत में देखें –

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप।।

(भा.१०.५.१८)

धाम का अवतार हुआ कृष्णावतार के साथ। **'तत आरभ्य'** माने जब से अवतार हुआ उसके पहले भी तो ब्रज रहा होगा लेकिन ऐसा नहीं था जो अब हुआ धामावतार के बाद। 'नन्दोत्सव' यानि जन्मोत्सव के बाद से नन्द का ब्रज सर्वसमृद्धिमान् हो गया, अनंत समृद्धियों से भर गया, चिन्मय सिद्धियाँ आ गयीं। क्यों आयीं ? **"हरेर्निवासात्मगुणै"**

'ब्रज धाम' के सर्वसमृद्धिमान होने के तीन कारण दिए हैं –

(१) हरेर्निवास – भगवान् का निवास, लीला (खेलना), वहीं रहना।

(२) आत्म – 'आत्म' माने भगवान् का शरीर ही है ये धाम। धाम और धामी में भिन्नता नहीं है।

(३) गुणै – जो गुण भगवान् में हैं वही सब गुण धाम में हैं। जो श्रीकृष्ण में गुण हैं वही उनके धाम मे हैं – 'प्रेम देना, विभुता, चैतन्य, सर्वव्यापकता आदि।' (ये धाम के विषय में स्पष्ट प्रमाण है।) इन तीन कारणों से ब्रज 'रमाक्रीडम्' श्रीजी के खेलने का स्थान' बना। 'आक्रीड' कहते हैं खेलने का स्थान (जिसे अंग्रेजी में 'स्टेडियम' कहते हैं)। यहाँ 'रमा' माने लक्ष्मीजी नहीं हैं, लक्ष्मीजी का तो प्रवेश ही नहीं है। जो श्रीकृष्ण को रमण कराती हैं यानि श्रीराधा, उनके खेलने का स्थान हो गया, लीला–स्थल प्रगट हो गया।

'धाम के अवतार' का मतलब ये नहीं होता है कि अब वहाँ धाम खाली हो गया, कुछ नहीं रहा। 'पूर्ण तत्त्व' को भगवान् कहते हैं। संसार में कोई चीज पूर्ण नहीं है, जैसे मान लो किसी के पास पचास करोड़ रुपये है, पचास करोड़ में से पचीस करोड़ निकाल लिया तो पचीस करोड़ ही रहेगा, चाहे कितना ही बड़ा धनवान हो। इस माया राज्य में जितनी चीजें होती हैं वो परिछिन्न (सीमित) हैं, इसलिए उनमें पूर्णता नहीं होती है। पूर्णता की परिभाषा है –

पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

'पूर्ण में से पूर्ण निकालो तो पूर्ण ही बचेगा, उसको घटाओ–जोड़ो, गुणा करो–भाग दो कुछ भी कर लो, वो सदा पूर्ण ही रहता है, उसको पूर्ण (विभु) कहते हैं।' हम लोग इस बात को इसलिए नहीं समझ सकते क्योंकि संसार में हर चीज सीमित है, देश–काल से परिछिन्न (कटी हुई) है। लेकिन जो शास्त्र में बताया गया है उसको समझना चाहिए कि धाम भी इसी तरह से विभु है, धाम वहाँ से आया तो भी वहाँ नित्य धाम में कोई घाटा नहीं हुआ। श्रीकृष्ण नित्यधाम से आये, अनेक ब्रह्माण्डों (अनन्त ब्रह्माण्डों) में लीला कर रहे हैं –

प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा।

(रा.मा.उ.८१)

भगवान् की अवतार–लीला में कोई घटाव–बढ़ाव नहीं होता है कि यहाँ अवतार हो गया तो अब वहाँ कैसे चलेगा काम। वो पूर्ण तत्त्व (विभु तत्त्व) है, इसलिए वहाँ घटाव का कोई प्रश्न ही नहीं होता है। 'धाम के अवतार' का ये तात्पर्य हुआ कि धाम वैसा ही वहाँ भी है, चाहे किसी भी ब्रह्मांड में प्रभु लीला करें, वहाँ धाम का अवतार होगा और उस अवतार में कोई घटा–बढ़ी नहीं होती।

'अवतरित रूप' में एक फर्क ये आ जाता है कि जब धाम यहाँ अवतार लेता है तो उसमें चूंकि प्राकृत जगत में लीला हो रही है तो ऐसा लगता है कि प्राकृत लोगों का भी आवागमन हुआ, जरासंध ने भी आक्रमण किया, कालयवन भी आया। साथ–साथ धाम की अप्राकृतता भी रहती है, जैसे – शतकोटि गोपियों के साथ रास हुआ तो इतना बड़ा रासमंडल कहाँ है ? एक हजार गोपी भी नहीं आ पाएँगी अगर नाचने लग जाएँ, ये सब बातें उसकी चिन्मयता भी दिखाती हैं कि धाम चिन्मय था, चिन्मय में वो पूर्ण धाम है ('कोई सीट खाली हो गई, जगह कम पड़ गई' ये सब बातें नहीं रहती हैं।) इसलिए अवतारकाल में 'चिन्मयता भी दिखाई पड़ती है और प्राकृतिक राज्य में लीला हो रही है तो प्राकृतिक लोगों का भी आवागमन दिखाई पड़ता है' दोनों चीजें एक साथ चलती हैं उसको धाम की अवतरित–भूमिका कहते हैं यानि अवतार के समय धाम में ये सब लीलाएँ होती हैं। ये धाम का दूसरा रूप है।

धाम का तीसरा रूप हमारे सामने है। भगवान् तो अवतार लेकर के चले गये। 'अवतरित धाम' भी लुप्त हो (छिप) गया लेकिन जो 'अधिभूत रूप' जहाँ अवतार लिया था वो हमेशा प्राकृतिक, जड़वत दिखाई पड़ता है, दुष्टों, नास्तिकों, पापियों को भी किन्तु फिर भी यहाँ जो प्राकृतिक रूप दिखाई पड़ रहा है, इसमें एक ऐसी अचिन्त्य शक्ति है जो बहुत जल्दी यहाँ उपासना को सफल बनाती है। इसलिए इसको चिन्मय समझकर के उपासना करनी चाहिए। इस धाम की उपासना से अधिदैव बहुत जल्दी प्राप्त हो जाता है और अधिदैव की कृपा से नित्य धाम की प्राप्ति हो जाती है।

क्रमशः....

❑❑❑

भगवन्नाम ही पालक-रक्षक

श्री बाबा महाराज द्वारा "नाम महिमा सत्संग" से संकलित

संसार विनाश की ओर जा रहा है, अन्तरिक्ष दूषित हो गया, पर्यावरण दूषित हो गया, यह दिखाई पड़ रहा है। संसार में व्याधियाँ, कई प्रकार के रोग बढ़ते जा रहे हैं। नये–नये रोग उत्पन्न हो रहे हैं, जिनका कोई इलाज नहीं, इसी से लोगों की आयु घटती जा रही है। पहले लोग दीर्घ जीवी होते थे, कलियुग में प्रायः अल्पायु, मन्दमति हो गये हैं, ये भागवत में लिखा है –

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः।।

(भा. १.१.१०)

श्रीमद्भागवत में यह भविष्य वाणी पहले ही कर दी गयी कि कलियुग में सबकी आयु थोड़ी हो जायेगी, **'मन्दाः'** शरीर की जठराग्नि आदि मंद हो जाया करेगी, मन्दबुद्धि हो जाएगी, मंदभाग्य हो जायेगा, अनेक उपद्रव–ग्रसित हो जायेगा व्यक्ति भी, समाज भी। समाज में तो ये सब बातें आज दिखाई पड़ रही हैं। लोग कितना भी अनुसन्धान कर लें, नई–नई खोज कर रहे हैं, अनेक औषधियाँ बनाई गयीं लेकिन इससे बीमारियाँ ज्यादा बढ़ रही हैं और आयु घटती जा रही है। लोगों की शक्ति घटती जा रही है। प्राचीनकाल में राणा प्रताप लोहे का कवच पहन के लड़ते थे, जो १२ मन लोहे का था और भाला आदि रखते थे जिसका वजन कई मन था। लोहे की तोप चलाते थे। आजकल का आदमी १२ मन का लोहा उठा भी नहीं सकता है और वो उसको फूल की तरह पहन कर लड़ते थे। इसलिए हर चीज दिन–प्रतिदिन घटती जा रही है। जब मैं (श्रीबाबा महाराज) ६० साल पहले बरसाने में श्रीजी मंदिर में जाता था तो वहाँ ग्वारिया बाबा के शिष्य थे किशोरीलालजी गोस्वामी, वह बहुत अच्छा गाते थे, पुराने संतों की आवाज में रस बहुत था। उन्होंने दुलरी–तिलरी की तान उठाई, वह वृद्ध हो चुके थे, उनका गला रुक गया। मेरी उम्र उस समय १७ साल थी। मुझे शास्त्रीय संगीत का काफी अभ्यास था, अतः मैंने उनकी रुकी हुई तान को स्वयं गाकर पूरा कर दिया। जब मैंने तान उठाई तो सब आश्चर्य से देखने लगे थे कि कौन गा रहा है?

उस समय गवैयाओं (संतों) की ऐसी आवाजें थीं – यहाँ बरसाने में गाओ तो बिना माइक के कोसों तक सुनाई पड़ता था। एक प्रसिद्ध ब्रजवासी गायक थे, एक बार वह किसी सभा में गीत गा रहे थे, दस हजार आदमियों की भीड़ में माइक फेल हो गया तो बिना माइक के उन्होंने गाया, सबने सुना। आजकल माइक के बिना कोई नहीं गा सकता। किसी की आवाज ही नहीं है क्योंकि शरीर में शक्ति नहीं है। हर चीज मंद है क्योंकि सब दूषित हो गया, पर्यावरण–अन्तरिक्ष आदि सब दूषित हो गये ।

प्रश्न – फिर आगे के समय में क्या होगा ?

उत्तर – आने वाले समय में भी आस्तिक लोग समझ सकते हैं कि भगवन्नाम ही रक्षा कर सकता है।

जग पालक बिसेषि जन त्राता ।।

(रा.बा.का.२०)

इन चौपाइयों का अर्थ भौतिकतावादी आदमी नहीं समझ सकता। सब आदमी विश्वास नहीं कर सकते, जैसे कि मान मंदिर का हर कार्य मात्र भगवन्नाम से ही चलता है। इसका सम्बन्ध श्रद्धा से है, श्रद्धाहीन लोग नहीं समझ सकते कि यहाँ से इतनी बड़ी ब्रजयात्रा केवल 'हरिनाम' से चलती है या और यहाँ जितने भी कार्य हो रहे हैं, एकमात्र हरिनाम से ही हो रहे हैं। ब्रज के पहाड़ों की सुरक्षा हेतु माफियाओं के विरुद्ध लड़ाई लड़ी गयी और उसमें मान मंदिर की विजय हुई जबकि विरोधी लोग अरबपति थे, सरकार भी उनके पक्ष में थी, उनके विरुद्ध विजय पाना लगभग असंभव कार्य था, लेकिन भगवान् के नाम की शक्ति से सफलता मिली। ये विश्वास वही कर सकता है जिसके अन्दर थोड़ी–सी भी श्रद्धा होगी। किसी समय मैं अकेला था और आज इतनी बड़ी सफलता भगवन्नाम से ही मिली है। इसलिये कोई कितना ही पैसे वाला हो जाये, भगवान् से बड़ा नहीं हो सकता।

जगपालक – संसार में कई जगह विनाशक–हथियार बन रहे हैं, लेकिन संसार का पालन व रक्षा करने वाला है – "भगवन्नाम" इसी से संसार आज तक बचा हुआ है विनाश होने से, यहाँ तक कि 'हरिनाम' से ही संसार में लोग जी रहे हैं। 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' बिना नाम–संकीर्तन के नहीं चलती है, बिना भगवन्नाम के कुछ नहीं चलता है। इसको नास्तिक लोग नहीं समझ सकते हैं। जो भी अपना और संसार का भला चाहते हैं, वे निष्काम भगवन्नाम–कीर्तन करें, करायें और यदि थोड़ी–सी भी आस्था व विश्वास है तो इसे और अधिक बढ़ाकर जन–जन तक फैलाएँ।

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ।
महतामपि कौरव्य विद्धयैकान्तिकनिष्कृतिम् ।।

(भा. ६.३.३१)

यमराज ने कहा है – इससे (भगवान् के नाम से) बड़ा कोई बल नहीं है। इसी के बल से प्रह्लाद, विभीषण आदि भक्त जीते। जो केवल अपने कर्म के बल पर जीतना चाहता है तो वो असंभव है, वो कभी नहीं हो सकता। इसलिए एक ही बात है –

"जग पालक बिसेषि जन त्राता ।।"

(रा.मा.बा.२०)

भगवान् के नाम से ही संसार का कल्याण है और विशेष करके वह 'जन' (भक्तों) की रक्षा करने वाला है। जैसे भगवान् नर–नारायण के तप से संसार का पालन हो रहा है, वैसे ही भगवन्नाम से भी जग का पालन हो रहा है।

भक्ति रूपी सुहागिनी का सुहाग है भगवन्नाम और **'बिधु पूषन'** सूर्य–चन्द्रमा भी यही है –

भगति सुतिय कल करन बिभूषन।
जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन।।

(रा.मा.बा.२०)

अगस्त्यजी ने एक बार भगवन्नाम के बल से सूर्य का सा काम किया था। इन ऋषियों ने नाम की महिमा समझी, नाम की शक्ति जानते थे। जैसे शेषजी और कच्छपजी पृथ्वी को धारण करते हैं, वैसे ही भगवन्नाम भी धारण करता है। पद्मपुराण में कथा है कि मन्द्राचल पर्वत को धारण करने के लिए कच्छप भगवान् का अवतार हुआ, लक्ष्मीजी प्रगट हुईं, फिर सब देवता कूर्म (कच्छप) भगवान् के पास आये। भगवान् ने कच्छप (कछुए) का रूप धारण किया था, देवताओं ने उनकी स्तुति किया। स्तुति करने के बाद भगवान् ने कहा – वर माँगो, क्या माँगते हो ? देवता बोले – पृथ्वी है, दिशाएँ हैं इनको धारण करने के लिए आप कृपा करें। तो भगवान् ने धारण किया। इसका जगह–जगह प्रसंग मिलता है। वही बात भगवन्नाम में है–

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के ।
कमठ सेष सम धर बसुधा के ।।

(रा.मा.बा. – २०)

दो चीजें होती हैं –१. स्वाद, २. तोष, भगवन्नाम में अमृत से भी ज्यादा रसास्वाद है। हमें अनुभव क्यों नहीं होता है क्योंकि विषयों का विष चढ़ा है। जैसा कि गोसाईं तुलसीदासजी ने लिखा है –

काम भुजंग डसत जब जाही।
विषय नीम कटु लगत न ताही।।

(तुलसी–विनयपत्रिका –१२७)

जब तक अन्तःकरण स्वच्छ नहीं होगा, तब तक ब्रह्म संस्पर्श का अनुभव नहीं हो सकता है। गीता में भगवान् ने कहा है–

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।।

(गीता ६.२८)

जब कल्मष चला जाता है तब ब्रह्म–सुख (भगवद्रस) का भोग करता है जीव, उसका स्वाद, उसकी सब चीजें उसके अनुभव में आ जाती हैं। कल्मष जब तक है, ब्रह्म–सुख नहीं मिलेगा। सभी धर्म–ग्रन्थों में यही कहा गया है, इसी को दोहावली में गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है –

यथा भूमि सब बीजमय, नखत निवास अकास ।
राम नाम सब धर्ममय, जानत तुलसीदास ।।

जैसे सारी भूमि बीजमय है (ये सब पेड़–पौधे, घास–तिनका आदि पृथ्वी में पैदा होते हैं, जमीन में सभी जगह चराचर–जीवों के उत्पत्ति की मुख्य वस्तु 'बीज' है) आकाश में अनेकों नक्षत्र हैं, अनेक लोक हैं वैसे ही भगवान् का नाम सभी प्रकार के धर्मों का मूल आधार (बीज) है।

"यथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास।
राम नाम सब धर्ममय जानत तुलसीदास।।"

इतनी–सी इस बात को स्वयं तुलसीदासजी कह रहे हैं भगवन्नाम–महिमा की गरिमा के कारण। अपना निजी अनुभव 'हरिनाम के प्रति सुदृढ़–निष्ठा' बता रहे हैं गोस्वामीजी। हर जगह इन्होंने अपनी बुराई किया है लेकिन ये पहला दोहा है जहाँ कहा है कि मैं 'राम नाम' की महिमा जानता हूँ। 'जो कुछ हमने किया है वो राम नाम के प्रताप से किया है' अहंकार के कारण नहीं कह रहे हैं, नाम महाराज की कृपा को बता रहे हैं। (वाल्मीकिजी के अवतार हैं गोस्वामीजी, नाम की महिमा से ही उन्होंने श्रीरामचरितमानस रचा और संसार को बताया।)

फिर आगे कहते हैं –

जन मन मंजु कंज मधुकर से।
जीह जसोमति हरि हलधर से।।

(रा.मा.बा. – २०)

भक्तों का मन क्या है ? भक्तों का मन सुन्दर कमल है, (कंज–कमल), भगवन्नाम भँवरा है, ये उपमा दे रहे हैं। भगवान् मधुकर हैं। भँवरा बैठ करके रस पीता है, यदि भँवरा नहीं बैठे तो उस कमल में कीड़े पैदा होकर के कमल को खा जायेंगे, तो भँवरा का बैठना कमल के लिए लाभदायक होता है। अगर मन में भगवन्नाम नहीं बैठेगा तो मन में कीड़े पड़ जायेंगें, मानस–रोग तुमको खा जायेंगे। *क्रमशः....*

❑❑❑

निर्गुणाभक्ति

(श्री बाबा महाराज के प्रातः कालीन सत्संग से संग्रहीत)

जो शुद्धा भक्ति है, जिसको निर्गुणा भक्ति कहते हैं वही वास्तविक शक्तिशालिनी भक्ति है, वो कैसी होती है, वह गुणातीत होती है। इसके माने क्या गुणमयी भक्ति भी होती हैं ? हाँ, होती हैं। गुणमयी भक्तियों की तीन कोटि होती हैं – सात्विकी, राजसी व तामसी। जिस भक्ति में न सतोगुण है, न रजोगुण है, न तमोगुण है, वो है निर्गुणा। वस्तुतः गुणमयी वृत्तियाँ ही भक्ति को गुणमयी बना देती हैं। इससे भक्ति दुर्बल बन जाती है, निश्चित दुर्बल बन जाती है और इसीलिए वह अनन्य भक्ति नहीं रहती है। हर आदमी अपने को अनन्य भक्त समझता है जबकि जब तक गुणमय धर्म हैं, वो अनन्य नहीं है। ये गुणमय धर्म क्या हैं ? वे हैं इच्छाएँ और इसीलिए जब नृसिंह भगवान् ने प्रह्लाद जी से कहा था कि तुम मुझसे कोई भी वरदान माँग लो तब उन्होंने भगवान् से कहा –

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते।।

(भा.७.१०.६)

जिस समय मनुष्य समस्त कामनाओं को छोड़ देता है, उस समय वह साक्षात् कृष्ण रूप हो जाता है।

इसलिए गुणमयी वृत्तियाँ चली गयीं तो मनुष्य साक्षात् प्रभु रूप हो जाता है किन्तु सभी कामनाएं चली जाएँ, ये बड़ा कठिन है और असम्भव है क्योंकि जीव की जब तक गुणासक्ति है तब तक कामनाएं अवश्य पैदा होंगी और गुणासक्ति का जाना भाषण में तो कहना आसान है लेकिन व्यवहारिक जीवन में इसका जाना कठिन है क्योंकि भगवान् ने स्वयं गीता में कहा है –

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।।

(गीता.१३.२१)

मनुष्य का जन्म अनेक योनियों में क्यों होता है ? दो प्रकार की योनियाँ होती हैं – सद्योनि (अच्छी योनि) और असद्योनि (बुरी योनि)। इन योनियों में जन्म होने का कारण है गुणसंग (गुणासक्ति)। जब तक आसक्ति कहीं भी है तो कामना अवश्य पैदा होगी, ऐसा नहीं हो सकता कि कामना न पैदा हो। हम कितना भी ऊँचा भाषण वेद–वेदान्त, उपनिषद, श्रुति–स्मृति आदि से सम्बंधित करें किन्तु भाषण करना अलग है लेकिन जब तक गुणासक्ति है, कामनाएं पैदा होती रहेंगी। गुणासक्ति क्या है ? गुण तीन हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। सतोगुण में सात्विक कामनाएं पैदा होती हैं, रजोगुण में राजसी और तमोगुण में तामसी कामनाएं पैदा होंगी। इसलिए भक्ति निर्गुणा नहीं रह पाती है। निर्गुणा भक्ति के लिए जैसा कि भागवत में कहा गया है –

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ।।

(भा.३.२९.१२)

जैसा कि प्रह्लाद जी ने कहा कि जिस भक्ति से जीव साक्षात् भगवान् बन जाता है उसी भक्ति से प्रलय में संसार नष्ट हो जाने पर भी उसका असर नहीं पड़ता है। सृष्टि होती रहे तो उसका असर नहीं होता है। भगवान् ने गीता में कहा है –

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।

(गीता.१४.२)

'इस ज्ञान को पाकर मनुष्य मेरे समान हो जाता है। तो क्या इसका अभिप्राय मनुष्य भगवान बन जाएगा ? नहीं, मेरे समान से मतलब **साधर्म्य** आ जायेगा। मेरे समान धर्म आ जायेगा। जीव तो भगवान् नहीं बन सकता, अन्यथा वह मायावाद में आ जायेगा जिसका चैतन्य महाप्रभु ने खंडन किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है –

जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

(रा.अयोध्याकाण्ड.१२७)

गोस्वामी जी ने ऐसा नहीं कहा कि जीव राम बन जायेगा अथवा कृष्ण बन जायेगा अपितु उसमें **साधर्म्य** आ जायेगा। **साधर्म्य** क्या है, वह यह है कि सृष्टि में उत्पन्न नहीं होगा, प्रलय में भी उसको कष्ट नहीं होगा। प्रलय में सैकड़ों–हजारों सूर्य निकलते हैं और सब ब्रह्माण्ड जला देते हैं, भस्म कर देते हैं, उस अवस्था में भी भक्त को कष्ट नहीं होगा। हम भाषण कितना भी दे लें लेकिन हमें शरीर के सभी सुख–दुःख व्यापते हैं इसलिए हम लोगों में **साधर्म्य** नहीं है। अतः जो गुणमयी वृत्ति है उससे बचना असंभव है क्योंकि जब तक गुणमयी आसक्ति है, सतोगुण में आसक्ति होगी तो सात्विक इच्छा पैदा होंगी, रजोगुण में आसक्ति है तो राजसी इच्छायें पैदा होंगी, तमोगुण में आसक्ति है तो तामसी इच्छायें पैदा होंगी। हम जीव हैं, शरीर में, मन में, इन्द्रियों में, बुद्धि में आसक्त हैं ऐसे में इच्छायें पैदा न हो, ये क्या संभव है ? जीव

की बुद्धि का आकर्षण और विकर्षण दोनों होते रहते हैं। कभी माया में आकर्षण हो जाता है तो कभी माया से विकर्षण (हट जाना) हो जाता है, ये दोनों स्थितियाँ होती हैं इसे प्रह्लाद जी ने भागवत जी में कहा है –

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा, मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं, पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ।।

(भा. ७.५.३०)

तुम्हारी बुद्धि कभी भगवान् में नहीं लगेगी चाहे स्वतः एकांत में, जंगल में चले जाओ, साधन करो, फिर भी बुद्धि भगवान् में नहीं लगेगी। **परतः** – संग करो चाहे विद्वानों का, योगियों का, चाहे किसी का संग करो तब भी बुद्धि भगवान् में नहीं लगेगी, जब तक तुम्हारे अन्दर गुणधर्म हैं। गुणधर्म क्या हैं – इन्द्रियों की प्रीति, इन्द्रियों की प्रीति क्या हैं ? जैसे गृहस्थ में आदमी मैथुन करता है, भोग भोगता है तो उसकी इन्द्रियाँ तामिस्र (अंधकार) में चली जाती हैं। भोग क्या है, अंधकार है।

अग्य अकोबिद अंध अभागी।
काई बिषय मुकुर मन लागी।।

(रा.बा.का.११५)

भगवान् शंकर बोले – हे उमा ! जीव के मन में विषयों की काई लगी है। काई क्या है – यह विषयों के संस्कार हैं। हमने लड्डू खाया, बड़ा मीठा था, उसका संस्कार बन गया। वो संस्कार क्या करेगा, वासना पैदा करेगा। संस्कार की बेटी है वासना, इसके कारण ऐसी इच्छा पैदा हो जाएगी कि फिर लड्डू खायें। वासना की बेटी है स्मृति। वासना पैदा हो गई तो लड्डू की याद आयेगी। स्मृति आते ही वैसा कर्म शुरू हो जाता है कि चलो, बाजार से लड्डू खरीदो, वहाँ मिलेगा। इसीलिए यह काई है जो मन में जमी है। सबसे प्रधान काई होती है मैथुन की। प्रह्लाद जी ने कहा है – **गृहव्रतानां** (भा.०७.०५.३०) गृहव्रत उसे कहते हैं, जब स्त्री पुरुष मिलते हैं, वे समझते हैं कि यह हमारा धर्म है, अधिकार है। हम कोई पराई स्त्री थोड़े ही भोग रहे हैं। ठीक है, तुम गृहव्रत हो, शास्त्र के अनुसार मैथुन क्रिया कर रहे हो लेकिन उसकी काई तुम्हारे मन में जमा हो रही है और जब तक वो काई है, कृष्ण रति उत्पन्न नहीं होने देगी। यह बात स्वयं भगवान् ने चीरहरण के प्रसंग में गोपियों से कही है –

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते।।

(भा.१०.२२.२६)

हे गोपियों ! जिसकी बुद्धि मुझमें लग गयी, उसके अन्दर कभी कामना नहीं पैदा हो सकती। कामवृत्ति काम्य–पदार्थों की इच्छा पैदा नहीं कर सकती जैसे खेत में बीज डालते हैं तो उसमें से अंकुर निकलता है, उसी बीज को भूंज दो और पानी में उबाल दो और फिर उस बीज को खेत में डालो तो उसमें से कुछ नहीं निकलेगा। इसी प्रकार जिसकी बुद्धि कृष्ण में लग गयी, वहाँ भोग की इच्छायें पैदा नहीं हो सकतीं, वहाँ पर अब काई नहीं रही। यह मल–मूत्र का मैथुनी भोग तो बहुत तुच्छ, बहुत गन्दी काई है–

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः।।

(भा.११.२.५३)

भक्त को तीनों लोक की लक्ष्मी या भोग की याद ही नहीं आएगी कि लड्डू मीठा होता है। विषयानन्द की स्मृति ही नहीं आएगी, स्मृति आ गयी तो वह कुंठित हो गयी। भक्त की अकुंठस्मृति होती है, उसे कभी याद ही नहीं आएगी कि लड्डू मीठा होता है क्योंकि उसके मन में काई (विकार) नहीं है, क्योंकि वहाँ संस्कार नहीं है क्योंकि वहाँ वासना नहीं है। ऐसा उसका मन बन जाता है –

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ।।

(भा.११.२.५०)

तीन चीजें होती हैं – काम, कर्म और बीज। काम माने कामवृत्ति या काम्यपदार्थ (भोग)। एक तो कामवृत्ति। कामवृत्ति पैदा हुई तो उससे वो कर्म पैदा होगा। लड्डू डालोगे मुँह में तो खाना पड़ेगा। दूसरा कामवृत्ति का कर्म है और तीसरा है 'बीज' अर्थात् उसकी वासना। **'न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः।'** सम्भव माने वहाँ वासना पैदा न हो जाये, यह सम्भव नहीं है। शुकदेव जी के सामने रम्भा एकान्त में गयी भोग की इच्छा लेकर, लेकिन उन्होंने कहा – यह सम्भव नहीं है। इसलिए यह स्थिति होती है, ऐसा नहीं कि नहीं होती है। **'वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः'** क्योंकि **'वासुदेवैकनिलयः'** उस चित्त में कृष्ण बैठे हुए हैं। उत्तम भागवतों की बात है यह, जो हम जैसे लड्डूदास, पेड़ादास हैं, उनकी बात नहीं है। क्योंकि वहाँ वासना सम्भव तब होती जब वहाँ गुणासक्ति होती है और वहाँ गुणासक्ति तो है ही नहीं। जैसा कि गीता में भगवान् ने कहा है–

पुरुषः प्रकृतिस्थो.....

(गीता.१३.२१)

जब गुणासक्ति नहीं है तो वहाँ गुणसम्बन्धी इच्छायें (कामनायें) पैदा नहीं होगी।

क्रमशः....

❑❑❑